कविता-कलाप

नामक

सचित्र कविताओं का संग्रह ।

सम्पादक,

महावीरप्रसाद द्विवेदी ।

प्रकाशक,

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग ।

१९२१

द्वितीयावृत्ति] मूल्य ३)

समर्पण ।

राजकार्य्यधुरन्धर, प्रजापालक, सहृदयशिरोमणि,

कविताप्रेमी

चरखारी-नरेश श्रीमन्महाराजाधिराज

सिपहदारुल्मुल्क श्रीजुझारसिंहजू देव बहादुर,

सी० आई० ई०

के

कर-कमलों में सादर समर्पित ।

महावीरप्रसाद द्विवेदी ।

सूची।

*ये चित्र रंगीन हैं।

कविता-कलाप के कवि

१ राय देवीप्रसाद बी० ए०, बी० एल०
२ पण्डित नाथूराम शङ्कर शर्म्मा
३ पण्डित कामताप्रसाद गुरु
४ बाबू मैथिलीशरण गुप्त
५ महावीरप्रसाद द्विवेदी

भूमिका ।

चित्रकला और कविता का घनिष्ठ सम्बन्ध है। दोनों में एक प्रकार का अनोखा सादृश्य है। दोनों का काम भिन्न भिन्न प्रकार के दृश्यों और मनोविकारों को चित्रित करना है। जिस बात को चित्रकार चित्र-द्वारा व्यक्त करता है उसी बात को कवि कविता-द्वारा व्यक्त कर सकता है। कविता भी एक प्रकार का चित्र है। कविता के श्रवण से आनन्द होता है, चित्र के दर्शन से। कवि और चित्रकार में किसका आसन उच्चतर है, इसका निर्णय करना कठिन है। क्योंकि किसी चित्र के भाव को कविता-द्वारा व्यक्त करने से जिस प्रकार अलौकिक आनन्द की वृद्धि होती है, उसी प्रकार कविता-गत किसी भाव को चित्र-द्वारा स्पष्ट करने से भी उसकी वृद्धि होती है। चित्र देखने से नेत्र तृप्त होते हैं, कविता पढ़ने या सुनने से कान। अतएव यदि एकही वस्तु, दृश्य या भाव का व्यक्तीकरण कविता और चित्र दोनों के द्वारा हो तो, नेत्र और कान दोनों की एकही साथ तृप्ति होने से, अवश्य ही आनन्दातिरेक की प्राप्ति होगी। यही समझ कर कितने ही चित्रकला-प्रेमी और कविता-लोलुप सज्जनों के आग्रह से यह सचित्र कविताओं का संग्रह पुस्तकाकार प्रकाशित किया जाता है। इसमें प्रकाशित कितनी ही सचित्र कवितायें "सरस्वती" नाम की मासिक पत्रिका में छप चुकी हैं। पर कितनी ही ऐसी भी हैं जो अब तक कहीं प्रकाशित नहीं हुई।

चित्रों के गुण-दोष का यथार्थ ज्ञान किसी बिरले ही को होता है। रुचिवैचित्र्य के कारण जिसे एक मनुष्य गुण समझता है उसे ही दूसरा दोष समझता है। यहाँ पर हमें एक कहानी याद आती है जिसे हमने किसी अँगरेज़ी पुस्तक में पढ़ा था। किसी चित्रकार ने यह सोचा कि एक ऐसा चित्र बनाना चाहिए जो सबको पसन्द आवे। इसी इरादे से उसने एक चित्र बना कर बाज़ार में रख दिया और चित्र के नीचे लिख दिया कि इसमें जहाँ पर जिसे कोई दोष देख पड़े वहाँ पर वह एक काला बिन्दु बना दे। शाम को जो उसने उस चित्र को देखा तो उस पर सैकड़ों बिन्दु पाये। ऊपर से नीचे तक सारा चित्र काला हो रहा था। दूसरे दिन उसने वैसाही एक और चित्र बना कर रख दिया। इस बार उसने चित्र के नीचे यह लिख दिया कि इसमें जहाँ पर जिसे कोई गुण देख पड़े वहाँ पर वह एक बिन्दु रख दे। इस बार भी चित्र की वही दशा हुई। शाम को वह फिर ऊपर से नीचे तक काला मिला। इस पर चित्रकार ने यह सिद्धान्त निकाला कि यह सम्भव नहीं कि सबको एकही चीज़ पसन्द हो। क्योंकि पहले दिन के सारे दोष दूसरे दिन गुण हो गये।

*ये चित्र रंगीन हैं।

उनकी कविता-सम्बन्धिनी सम्मति किसी काम की नहीं। वे जो चाहें कहा करें; जो चाहें लिखा करें। ज्ञाता मनुष्य कभी उनकी बातों पर ध्यान न देंगे। कवि ही कविता का मर्म्म जान सकता है; सहृदय ही भली बुरी कविता को पहचान सकता है। यह काम इतर जनों का नहीं। किसी ने बहुत ठीक कहा है:—

यत्सारस्वतवैभवं गुरुकृपापीयूषपाकोद्भवं
तल्लभ्यं कविनैव नैव हठतः पाठप्रतिष्ठाजुषाम्।
कासारे दिवसं वसन्नपि पयःपूरं परं पङ्किलं
कुर्वाणः कमलाकरस्य लभते किं सौरभं सैरिभः ?

अर्थात्—गुरु के कृपारूपी पीयूषपाक से उत्पन्न हुए सरस्वती के वैभव को कविजन ही प्राप्त कर सकते हैं, कविता का हठपूर्वक पाठमात्र करके शाबाशी लूटनेवाले इतर लोग नहीं। तालाब में दिन भर पड़े रहनेवाले और सारे पानी का कीचड़ कर डालनेवाले भैंसे को भला कभी कमलों का सुन्दर सौरभ मिल सकता है ?

अतएव यदि इस कविता-संग्रह से दो चार भी काव्य-मर्मज्ञ सज्जनों का मनोरञ्जन हो जाय तो हम इतने ही को बहुत कुछ समझेंगे। यों तो न कवियों ही की कमी है, न कविता के समालोचकों ही की। परन्तु उन सबको सन्तुष्ट करने की चेष्टा करना व्यर्थ है।

इस पुस्तक की अधिकांश कवितायें बोल-चाल की भाषा में हैं। कितने ही छन्द भी ऐसे हैं जिनका आज-कल की हिन्दी-कविता में बहुत कम प्रयोग होता है। किसी किसी की राय है कि बोल-चाल की भाषा में अच्छी कविता नहीं हो सकती; और कुछ विशेष प्रकार के छन्दों को छोड़ कर और छन्दों का प्रयोग करने से कविता का माधुर्य्य जाता रहता है। क्योंकि, उनकी समझ में बिना शब्दों को तोड़े मरोड़े ऐसे छन्द बन ही नहीं सकते। ये बातें कहाँ तक सत्य हैं, इसके विचार का भार हम कविता पर सम्मति देने के अधिकारी सज्जनों पर छोड़ते हैं। हम अपनी तरफ़ से कुछ नहीं कहना चाहते। हाँ, इतना हम अवश्य कहेंगे कि इस पुस्तक में जितनी कवितायें बोल-चाल की भाषा में हैं उनमें शब्दों का अंग-भंग बहुत कम हुआ है। इस नये ढंग की कवितायें सरस्वती में प्रकाशित होते देख बहुत लोग अब इनकी नक़ल अधिकता से करने लगे हैं। यह इस बात का प्रमाण है कि इस तरह की भाषा और इस तरह के छन्दों में लिखी गई कविता दिन पर दिन लोगों को अधिकाधिक पसन्द आने लगी है। अतएव, बहुत संभव है, कि किसी समय हिन्दी के गद्य और पद्य की भाषा एकही हो जाय। तथास्तु।

जुही, कानपुर,
२ फ़रवरी १९०९

महावीरप्रसाद द्विवेदी

इस कहानी को आप निरी कहानी ही न समझिए। इस तरह के उदाहरण बहुधा देखने में आते हैं। राजा रविवर्म्मा के चित्र चित्रकला की कारीगरी के लिए इस देश में सबसे अधिक प्रसिद्ध हैं। परन्तु वे भी किसी किसी की दृष्टि में निर्दोष नहीं हैं। बँगला के विख्यात कवि और लेखक बाबू रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने रविवर्म्मा के कुछ चित्रों की जो समालोचना लिखी है उसे पढ़ने से हमारे कथन की सत्यता सिद्ध हो जायगी। इस समालोचना में चित्रों के गुण-दोष की अच्छी मीमांसा की गई है। परन्तु किसी अच्छे चित्रकार के चित्र में यदि किसी को दोष देख पड़े तो इससे वह अनवलोकनीय और अनुपादेय नहीं हो सकता। क्योंकि रुचि की विचित्रता और चित्रविद्या के न्यूनाधिक ज्ञान के अनुसार परीक्षकों में मत-भेद का होना बहुत स्वाभाविक है। "कवि व चित्रकार" के सम्पादक परलोकवासी पण्डित कुन्दनलाल ने एक राजपूत का चित्र बनाया। राजपूत लड़ाई में जाने से पहले अपने महलों में गया और लौटते समय यह सोचने लगा कि लड़ाई में मैं किस किसको अपने साथ ले जाऊँ। उसके मन की बात जान कर उसकी स्त्री ने कहा:—आपके साथी सिर्फ़ तीन हैं। आपका दिल, आपका कटार और आपका हाथ। चित्र में यही दृश्य था। इस चित्र को पण्डित जी ने शिमला की चित्र-प्रदर्शिनी में भेजा। वहाँ एक अँगरेज़ी अख़बार के सम्पादक को वह इतना बुरा जँचा कि उसने उसे प्रदर्शिनी से फिँकवा देने की सिफ़ारिश की। यही चित्र, कुछ दिनों बाद, बम्बई की चित्रप्रदर्शिनी में भेजा गया। उस प्रदर्शिनी के मन्त्री एक निपुण चित्रकार थे। इन्होंने इस चित्र को इतना पसन्द किया कि २५० रुपये पर उसे मोल लेने या अपने एक चित्र से बदला करने की इच्छा प्रकट की। इस उदाहरण से आप समझ सकते हैं कि जिन्हें चित्र-कला-कौशल का अच्छा ज्ञान नहीं है उनकी राय कहाँ तक मानी जा सकती है। सच तो यह है कि हीरे की परख जौहरी ही कर सकता है।

ठीक यही बात कविता की भी है। कविता की यथार्थ जाँच वही कर सकता है जो कवि है, जो सहृदय है, जो रसिक है, जो मानवी स्वभाव और प्राकृतिक नियमों का उत्तम ज्ञाता है। जिन लोगों में ये बातें नहीं उनका यह कहना कि यह कविता अच्छी है, यह बुरी; यह सरस है, यह नीरस उनकी धृष्टता के सिवा और कुछ नहीं। जिसका अन्तःकरण सरस नहीं, जिसे क्रोधोत्पादक दृश्य को देख कर कोप नहीं होता, जिसकी आँखें कारुणिक बातें सुन कर आर्द्र नहीं हो जातीं, वह बेचारा कविता की भला क्या परीक्षा करेगा। एक बार एक नाटक के अन्त में पूने के पेशवा नारायणराव की हत्या का दृश्य दिखाया गया। सैकड़ों शिक्षित दर्शक नाट्यशाला में बैठे थे। उनमें से एक को छोड़ कर और किसी पर कुछ भी असर न हुआ। और, हुआ भी हो तो उसके कोई दृश्य चिह्न नहीं देख पड़े। उस एक दर्शक के मुँह पर पहले सामान्य कारुणिक विकार उत्पन्न हुए; फिर आँखों से आँसू निकलने लगे; कुछ देर में दुःख से अभिभूत होकर वह बेहोश हो गया। ऐसे ही सहृदय जन कविता के भले बुरे होने की सच्ची जाँच कर सकते हैं। जिनके कलेजे पत्थर के समान कड़े हैं

१—सरस्वती।

(१)

कुन्द घनसार चन्द्र हू तें अङ्ग शोभावन्त
भूखन अमन्द त्यों विदूखत हैं दामिनी।
कञ्जमुखी कञ्जनैनी बीना करकञ्ज धारे
सोहै कञ्जआसन सुरी हैं अनुगामिनी॥
भाव रस छन्दन की कविता निबन्धन की
पूरन प्रसिद्ध सिद्ध सिद्धिन की स्वामिनी।
जै जै मात बानी विश्वरानी वरदानी देवी
आनँद प्रदानी कमलासन की भामिनी॥

(२)

चारुता नवल कुन्द-वृन्द सी धवल सोहै
कीरति अपार हिमधार सी सुहाई है।
सोहै सेत सारी सुचि मोतिन किनारी वारी
आसन सरोज सेत सोभा सरसाई है॥
पूरन प्रबीन कर भासैं बरबीन वेद
सेतमणि माल सुमराल सुघराई है।
बानी को प्रकाशवन्त ध्यान के निरन्तर यों
बन्दत अनन्त सुरसन्त समुदाई है॥

(३)

अली राजहंसन की वारी हंस-वाहन पै
चारुता पै चाँदनी की आभा चारु वारी है।
सेत कञ्ज आसन पै कैरव सुपुञ्ज वारे
नैनन पै खञ्जन की वारी छबि सारी है॥
मञ्जुल पगन वारी छटा अरविन्दन की
वीना पै मलिन्दन की वारी गुञ्ज प्यारी है।
मुख पै अमन्द चन्द पूरन की वारी प्रभा
शारदीय शोभा शारदा पै वारि डारी है॥

(४)

कुन्दकुल चाँदनी में, पूरन कुमोदिनी में,
सेत वारिजात पारिजात की निकाई में।
गङ्गा की लहर में छहर माहिँ छीरधकी,
चन्द ताष हर में, सुधा की सुघराई में॥
चित्त की विमलता में, कला में, कुशलता में,
सत्य की धवलता में, काव्य की लुनाई में।
भासमान बानी ज्ञान-ध्यान के समागम में,
गूढ़ निगमागम पुरान-समुदाई में॥

(५)

मञ्जुल बरन वारी कञ्ज से चरन वारी
सुखमा छरन हारी चन्द्रमा की रति की।
दुर्मति दरन हारी जड़ता हरन हारी
श्रद्धा की करन हारी माता मञ्जु मति की॥
पूरन सरनवारी ज्ञानी आदरन वारी
सेवा स्वीकरन वारी योगी सिद्ध जति की।
अन्तस करन भारी आनँद भरन वारी
वेद की धरन हारी प्यारी प्रजापति की॥

(६)

हरिजस पावस में कहरै सिखी सी तुही
वेद कुसुमाकर में कूजती पिकी सी है।
तूही सुखदानी रस धर्म की कहानी माहिँ
कर्म-बीथिका में बानी दीपिका सी दीसी है॥
नीति-छीर-धारा में उदारा नवनीति तूही
मेधा मेघमाला में लसति दामिनी सी है।
ज्ञातन की प्रतिभा सुमति कविनाथन की
गाथन की सिद्धि तेरे हाथन बिकी सी है॥

सरस्वती।

लक्ष्मी ।

(७)

सनक, सनन्दन, जनक, व्यास-नन्दन से
रहत सदा से सदा सुखमा सराहन के ।
ब्रह्मा अविनाशी विष्णु रहैं अभिलाषी बने
भारती को महिमा-समुद्र अवगाहन के ॥
पूरन प्रकाश ही की मूरति सी भासमान
नेमी हैं दिनेश से चरन चारु चाहन से ।
मोद-प्रद सुखद विशद जोई "हंसपद"
सेवै पदकञ्ज सो बहाने हंस बाहन के ॥

(८)

शब्द के विकास रूपी भासमान कानन में
लहे बिन शक्ति तेरी हले नाहिं पत्ता है ।
पूरन अपार शक्ति व्यापी है उदार तेरी
चौदहूँ भुवन बीच जेती बुद्धिमत्ता है ॥
जोग में, मनन में, सुमति में, प्रवीनता में,
ज्ञान में, विचार में, विवेक में महत्ता है ।
जगत चराचर को बीज है प्रणव मन्त्र
बीज ताहू मन्त्र को सरस्वती की सत्ता है ॥

(९)

पूरन समूह सुर सन्तन प्रतापिन को
तेरे पदपङ्कज के प्रेम में पगो करै ।
पाय भरपूर ज्ञान, त्यागि भय भागभरो
भारती भवन्ती भक्त भव तें भगो करै ॥
लगन लगाय नीके अपने स्वरूप माहिँ
दिन दिन माया तें विरागी बिलगो करै ।
तेरी ही कृपा सो जग जागरूक प्रतिभा की
जगमग जोति उर जोगी के जगो करै ॥

(१०)

वाहन अनूप है विवेक को स्वरूप ऐसो
सुखद विशद जो जगत में बखानो है ।
सेवक अनूप हैं रमेश सुरभूप ऐसे
वन्दना को मुदित विधान जिन ठानो है ॥
ज्ञान की अनूप राजधानी है प्रकाश रूप
जामें बसिबे को मुनिवृन्द ललचानो है ।
दान में लुटाये होत पूरन अधिक ऐसो
विद्या को अनूप विश्वरानी को खजानो है ॥

२—लक्ष्मी ।

(१)

"पद्मा," "रमा," पद्ममुखी, ललामा
पद्मासना, पद्मवनाभिरामा ।
पद्मेत्तणी, पद्मपदी, उदारा,
देवी, "जयन्ती," जय विष्णुदारा ॥

(२)

"श्री" हेमवर्णा, "हरिणी," सुलीला,
दारिद्र-बाधा-हरिणी सुशीला ।
आनन्द-रूपा, प्रकृतिस्वरूपा,
सो वन्दनीया जननी अनूपा ॥

(३)

मनोहरा, पद्मधरा, प्रसन्ना,
सुखाकरा, साधु-सुर-प्रपन्ना ।
हिरण्यरम्या, नदराज-कन्या,
सुराग्रगण्या वर-रूप-धन्या ॥

(४)

मातङ्ग-हिंकार-विनोदिनी है,
तुरङ्गपूर्णा, रथ-मोदिनी है ।
सुनागरी, सागर-वासिनी है,
गुनागरी, विष्णु-विलासिनी है ॥

(५)

मुक्तालतासी, सुमणि-प्रभासी,
विद्याछटासी, सुमना सुधासी ।
"सूर्य्या," "क्षमा," काञ्चनवल्लिकासी,
"चन्द्रा," शुभा, मञ्जुल-मल्लिकासी ॥

(६)

सत्य-प्रभा, सत्व-प्रकाशिकासी,
प्रभातकालीन-प्रदीपिकासी ।

सत्पूर्ण-चन्द्रोज्ज्वल-चन्द्रिकासी,
अलोल-विद्युद्-द्युति-मालिकासी ॥

(७)

सम्पत्करी सर्व-व्यथाहरी है,
तेजःकरी भूरि यशःकरी है।
लोकेश्वरी, देवगणेश्वरी है,
अन्नेश्वरी, प्राणधनेश्वरी है ॥

(८)

देवेन्द्र के लोक प्रभास तेरो,
यक्षेन्द्र के ओक विभास तेरो।
साकेत-कैलास-निवास तेरो,
श्रीविष्णु के पास विलास तेरो ॥

(९)

अज्ञान को तू रवि-मालिका है,
संकष्ट को काल-करालिका है।
दयासमुद्रा, जन-पालिका है,
अनूप माता जल-बालिका है ॥

(१०)

विद्यावती है, गरिमावती है,
प्रज्ञावती है, महिमावती है।
तू शंकरी है अरु भारती है,
प्रभावती है, प्रतिभावती है ॥

(११)

व्यापार-बीथी बिच तू उजेरी,
संसार-खेती बिच तू हरेरी।
उद्योग-उद्यान-वसन्त तू है,
दिगन्त में सार अनन्त तू है ॥

(१२)

वसन्त में पुष्प-ललाम तू है,
वर्षा-विहारी घन श्याम तू है।
हेमन्त में चारु तुषार तू है,
संसार-सत्ता अरु सार तू है ॥

(१३)

तू मङ्गला मङ्गल-कारिणी है,
सद्भक्त के धाम विहारिणी है।
माता सदा पूर्ण-पिता-समेता,
कीजै हमारे चित में निकेता ॥

(१४)

तू अम्ब मोपै अनुकूल जो है,
संसार में, तो, प्रतिकूल को है ?
आदित्य-वर्णा वर विश्वरानी,
मैं तोहि बन्दौं मन काय बानी ॥

(१५)

श्री वासवी की जय माधवी की,
सुमालिनी की वन-मालिनी की।
सुरोत्तमा की सुमनोरमा की,
त्रिलोक-मा की अखिलोपमा की ॥

३—रामचन्द्रजी का धनुर्विद्या-शिक्षण।

(राग देश, ताल झूमड़ा)

(१)

सुरपुर होत जय जयकार।
शस्त्र-विद्या आज सीखत अवधराजकुमार। सुरपुर०१
कुल-पुरोहित नियत कीन्हीं जो लग्न शुभ वार।
ताहि में रघुबर गहे कर चाप सर तरवार। सुरपुर०२
गुरु बतावत लेत सोई सीख लगत न बार।
संस्कारी धनुषधारी कहत देखन हार। सुरपुर०३
सखन मोद विनोद परजन खलन भीति अपार।
सुरन धीरज देत यह नव वीर गुण सञ्चार। सुरपुर०४
पैंक बदलत कर चलावत ऊर्ध्व ग्रीवा धार।
सिखत नृपसुत पैरबो सो समर-पारावार। सुरपुर०५
बाल-रूप अनूप शोभा देत शस्त्रप्रहार।
मनहुँ प्रविशत वीर-रस वात्सल्य के आगार। सुरपुर०६
काल के संवाद सी जो लगत असुरन भार।
अभय धुनि सी सुनत सुरसो धनुष की टंकार। सुरपु०७

श्रीरामचन्द्रजी का धनुर्विद्या-शिक्षण ।
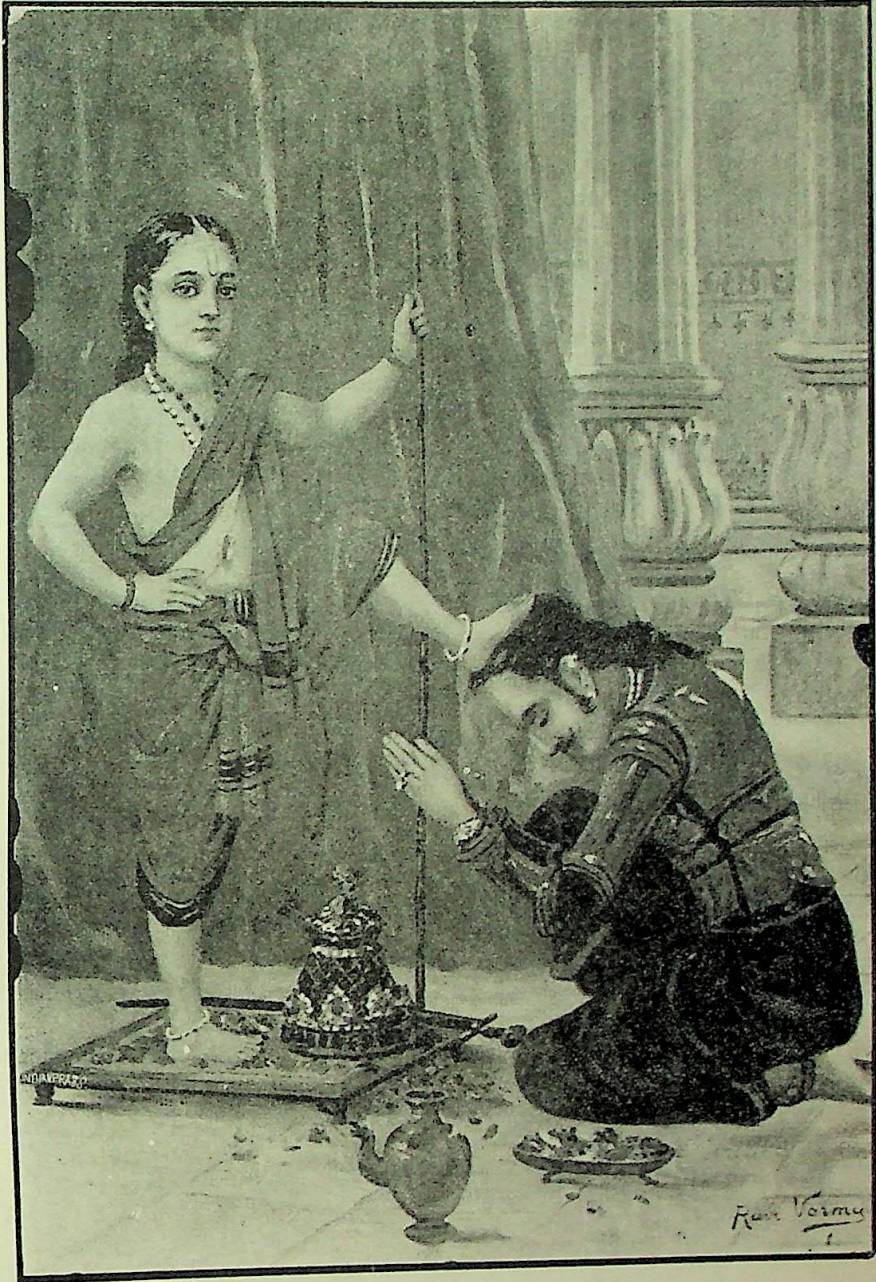
वामन ।

पीतपट, धनु रतनमय, तन श्याम, शर बौछार ।
तड़ित-सुरधनु-सहित-घन जनु रह्यो बुन्दन डार। सु० ८

स्वच्छ सायक गुच्छ ऊरध उड़त बारम्बार ।
मनहुँ सुर-संताप-ग्रीषम-ताप हरन फुहार । सुर०६

रामकर्षित चाप लचि लचि लहि ललित आकार ।
मनहुँ निज प्रभु-भ्रकुटि त्रुटि को करि रह्यो प्रतिकार। सु०

मृदुल कर गत कठिन धनु की विवश गतिहि निहार।
होत अचरज जलज जीती शमीद्रुम की डार। सुर० ११

रुचत पूरन रामचन्द्रहि वीरता व्यवहार ।
वेग ही अब दूरि ह्वै है भूरि भूतलभार । सुर० १२

(२)

सरजूतीर सुख सरसाय ।
धनुर्वेद अखेद सीखत जहाँ चारिहु भाय। सरजू० १
प्रात ही लै तात आयसु नगर बाहर जाय ।
शस्त्र को अभ्यास प्रमुदित करत राघवराय । सरजू०२
सुभग सोहत मृदुल छोटे हाथ छोटे पाय ।
तैसेही सर चाप छोटे रहे अङ्ग सुहाय । सरजू० ३
परत मुख नव भानु दुति जनु बाल श्रम जिय लाय।
स्वेदकन मृदु करन पोछत कुल पिता अपनाय। सरजू०४
कबहुँ कावा कबहुँ धावा कबहुँ थिर करि काय ।
सघन फेंकत वान सर सर कान लौं धनु लाय। सरजू०५
अर्धचन्द्राकार शर कोउ शूल सो दरसाय ।
हरत कोउ प्रकाश कोऊ प्रभा देत बढ़ाय । सरजू०६
कोउ काटत कोउ छेदत कोउ देत उड़ाय ।
कोउ बहावत कोउ जरावत राम-शर-समुदाय। सरजू७
एक रिसकर चलत विसधर सरिस सर लहराय ।
एक औचक केसरी सम उचकि घालत जाय । सरजू० ८
वान को संधान दस दिस मनहुँ धावन धाय ।
देत दिकपालन सँदेसो, "रह्यो सुख नियराय"। सर०६
छवि छके छिति छाँह छिन छिन रहे जलधर छाय ।
बिजन सीतल-सलिल-सरसित रहि समीर डुलाय।१०
करत यों अभ्यास रघुबर बालखेल विहाय ।
मनहुँ जानत लेन हमको आइ हैं मुनिराय । सरजू० ११
रहे सुरगण शंख भेरी बार बार बजाय ।
हरषि जय जय कहत "पूरण" सुमन घन बरसाय। १२

४—वामन ।

(१)

अदेवन की उर आनि अनीति,
निबाहन को सुर-पालन-रीति ।
सुधारन को जन को अधिकार,
धरयो हरि वामन को अवतार ॥

(२)

बड़े जन को नहिं माँगन योग,
फबै छल-साधन में लघु लोग ।
असङ्ग रमापति विष्णु अनूप,
धरयो एहि कारन वामन-रूप ॥

(३)

भले सजि साज, चले मख-भूमि;
पगै पग लेति धरातल चूमि ।
प्रसून घने बरखैं सुर-गोत ;
दिवाकर तेज निछावर होत ॥

(४)

जबै पहुँचे बलि भूपति द्वार,
गये सब मोह रहे मनवार ।
कह्यौ कोउ चन्द, कह्यो कोउ भान,
कोऊ समुझ्यो तप मूरतिमान ॥

(५)

गयो बलि भूपति पै दरबान ;
कियो द्विज को इमि रूप बखान ।
"सुनौ विनती मम दानव-भूप !
खड़ो दर पै बटु एक अनूप ॥

(६)

"विराजत है तनु पै मृग-छाल ;
छटा जुत छाजत छत्र बिशाल ।

कमण्डल दण्ड लसैं कर माहिँ ;
महा द्युति की उपमा जग नाहिँ ॥

(७)

"बड़े दृग हैं अरविन्द समान ;
प्रलम्ब भुजा गज-शुण्ड प्रमान ।
बड़ो तपवान, बड़ो गुन गेह ;
अहै पर बावन अंगुल देह !"

(८)

गई रुचि दर्शन की अधिकाय,
कह्यो बलि सादर लेहु बुलाय ।
कियो तब वामन यज्ञ-प्रवेश—
हुताशन जङ्गम सो वर वेश ॥

(९)

अलोल विलोचन सों बलि भूप
विलोकि जक्यो वह मोहन रूप ।
फल्यो निज पुण्य हिये इमि जान,
अनेक विधान कियो सनमान ॥

(१०)

भरे अनुराग कहे पुनि बैन,
"गिरा मम भाग सराहि सकै न ।
कृतारथ मोहि करौ द्विज-राज ;
बनै कछु याचन सों मख-काज" ॥

(११)

रमावर चारु-चरित्र-प्रवीन ;
धरा तब माँगि लई पग तीन ।
विचारि कछू, कछु जोग मिलाय,
"अरे बलि" ! शुक्र कह्यो घबराय ॥

(१२)

"अरे मतिमान ! कहाँ तुव ध्यान ?
न दे बटु को अवनी-तल-दान ।
लगै लघु देखन में यह व्यक्ति ;
विशाल पराक्रम है अरु शक्ति ॥

(१३)

"न भूल अरे नृप ! है यह विष्णु ;
अदेव-समूह-विनाशन-जिष्णु ।
अरे पग तीन धरा मत जान,
बुरे परिणाम भरो यह दान" ॥

(१४)

बली बलि यों गुरु सों कर जोरि—
कह्यो, "नहि सत्य सकूँ प्रण तोरि ।
धरा, धन, प्राण, चहो सब जाहिँ ;
मही करि दान कहूँ किमि नाहिँ" ॥

(१५)

कियो तनु दीरघ विष्णु प्रतापि ;
लिये पग द्वै वसुधा नभ नापि ।
तृतीय पुजावन को नृपराय,
दियो मुद सों निज अङ्ग नवाय ॥

(१६)

सुभक्त-प्रपन्न प्रसन्न रमेश,
निवास बताय रसातल-देश ।
कह्यो, "सुनु दानिशिरोमणि ! तोहि,
मिलै वर पूरन जो रुचि होहि" ॥

(१७)

कह्यो बलि भूप बढ़ाय हुलास—
"यही वर माँगत हूँ सुखरास ।
प्रभात प्रभो ! मम धाम पधारि,
सदा निज दर्शन देहु मुरारि !"

(१८)

छल्यो बलि को नहि भूतल नाथ,
छले बलि के कर सों प्रभु आप ।
सदा जय पूरन विश्व महेन्द्र,
सदा जय भक्त भविष्य-सुरेन्द्र !

— —
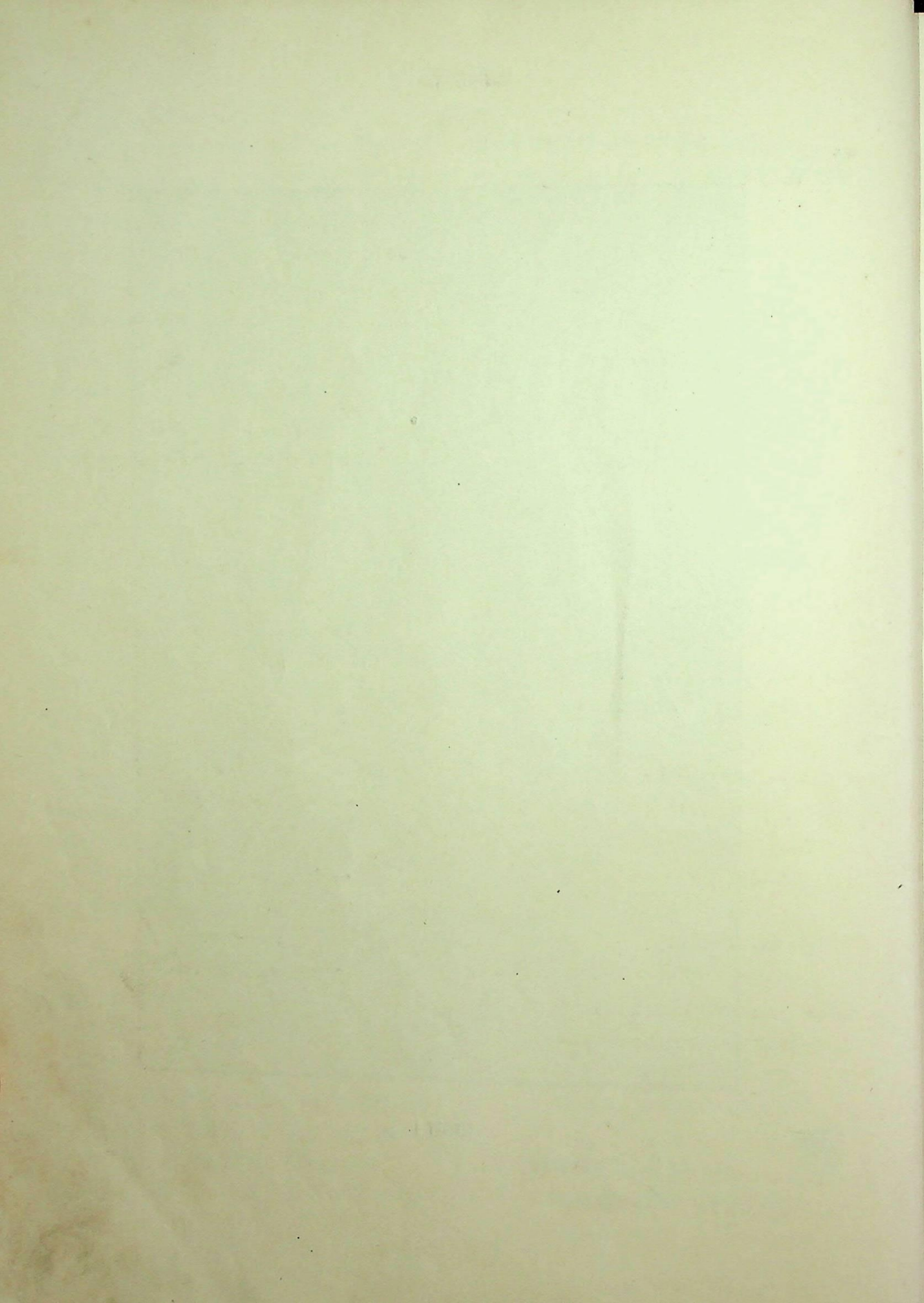
शकुन्तला-जन्म ।

जो दे रही कौशिक को शकुन्तला, है मेनका सो यह मुक्त-कुन्तला ।
वे खेद पा के व्रत-भङ्ग-कारण; उसे करों से करते निवारण ॥

५–शकुन्तला-जन्म ।

(१)

लहन को वर ब्रह्मपद, निज दहन को अघलेश,
बहन को वैरागरस में, सहन को तनक्लेश ।
गहन विपिन प्रवेश करि मुनिराज विश्वामित्र,
तप-विधान अनल्प को संकल्प कीन पवित्र ॥

(२)

दूब-भोजन साधि क्रम सों, बहुरि धूमाहार,
पुनि पवन के पान ही को मान प्राणाधार ।
शान्तरस में जती दिन दिन अधिक भीजत जात,
काम छीजत जात छिन छिन जात सूखे गात ॥

(३)

डिगत सो निज समुझि आसन पाकशासन लोल,
मैनका सन यों कहे शंका-प्रकासन बोल ।
"करत जो तप गाधिनन्दन तासु खण्डन होहि,
"अपसरा-बर-बंस-मण्डन तव सराहूँ तोहि" ॥

(४)

देवबाला, छबिरसाला, बसी-करन-प्रवीन,
सहित हासी चञ्चला सी चपल बीड़ा लीन ॥
कहे गर्बीले रसीले वचन रोचक वाम,
"मैन के बस करहुँ मुनि को मैनका तब नाम" ॥

(५)

भूरि जोबन तपोवन में रह्यो पूरि वसन्त,
हरित मंजुल सुमन संजुत हरत मनहि दिगन्त ।
वसुमती-युवती-बसन की लसन जनु छबिसार,
हरी जासु जमीन है रङ्गीन बूटेदार ॥

(६)

लगत हीतल मन्द शीतल पवन परिमल-ऐन,
मनहुँ रोचन मान-मोचन कहति दूती बैन ।
गुञ्ज-धुनि अलि-पुञ्ज छावत कुञ्ज कुञ्ज मँझार,
मञ्जु श्यामा अङ्ग जनु मञ्जीर की झनकार ॥

(७)

कोकिला, चण्डूल, चातक, चक्रवाक, चकोर,
शुक, कपोत, महोक, मैना, लाल, मुनिया, मोर ।
विविध रङ्ग विहङ्ग विहरत करत सुन्दर गान,
मनहु मधु-नृप-मण्डली संगीत की गुनवान ॥

(८)

नीलगाय, कुरङ्ग, कुञ्जर, आदि पशु-समुदाय,
छेम सों विहरत परस्पर प्रेमभाव बढ़ाय ।
सचिव तप को पाय जनु आदेश पावन देश,
सत्त्वगुणमय चरित कीन्हें त्यागि दुर्गुण लेश ॥

(९)

मैनका जब कीन बन छबिलीन माहिँ प्रवेश,
कहत देखनहार है शृङ्गार नारी वेश ।
करत कोउ अनुमान देवी विपिन की दुतिमान,
कहत कोऊ है महीतल मध्य शीतल भान ॥

(१०)

भ्रकुटि धनु को डरत नाहीं अरत शुक ललिचाय,
चहत अधरन चोंच मारन बिम्ब को भ्रम खाय ।
शङ्क चम्पक-रङ्ग की तजि चञ्चरीक सुपुञ्ज,
भूलि अङ्ग सुगन्ध पै लगि सङ्ग छावत गुञ्ज ॥

(११)

द्रुमन सों झरि सुमन सोहैं मनहु बनदेवीन,
अंगना के पन्थ डारे पाँवड़े रङ्गीन ।
तरल नवदलकलित मुकुलित तरु-लता लहराय,
पुलकि कर सों मनहुँ स्वागत करति मुद सरसाय ॥

(१२)

आन बान समेत एहि विधि रूपमान-निकेत,
साधुराज समीप पहुँची काज साधन हेत ।
रथ मनोरथ, पैक पग, गजराज गति, मन बाजि,
जनु अनङ्ग चढ्यो अनी चतुरङ्गिनी निज साजि ॥

(१३)

चन्द लोचन, मन्द स्वासा, तपन तेज अमन्द,
लीन लखि आनन्द में मुनि द्वन्दहीन सुछन्द ।

अपसरा सुमनोहरा तब करन लागी गान,
पवनपथ जनु सैन पठई दुर्ग दुर्गम जान ॥

(१४)

गई छूटि समाधि उग्र उपाधि गुनि मुनिभूप,
अधखुले दृग यों लखैं मृगलोचनी को रूप।
करत जिमि विसराम अपने धाम औचक वीर,
पाय खटका खोलि अर्ध कपाट झाँकै धीर ॥

(१५)

बीन के जुग तुम्ब ही तम्बूरहु विन तार,
कम्बु में कलकण्ठरव कलहंस में झनकार।
नचत खञ्जन कञ्ज पल्लव करत रञ्जन गान*,
बीतराग छके निरखि संगीत को सामान ॥

(१६)

पन्नगी, सुविहङ्ग, कुञ्जर, केसरी इक सङ्ग,
बसत हिलमिल, लसत निर्मल सत्त्वगुन को रङ्ग †
मानि मन्त्रण अतन को मुनि तपन-काज-प्रवीन,
तीय-तन-नूतन-तपोवन-रमन को मन कीन ॥

(१७)

अलङ्कार-प्रकार तजि बरनहुँ विना विस्तार,
सङ्ग मुनिवर अङ्गना को कीन्ह अङ्गीकार।
बढ़ी सुरपुरवासिनी की वासना उर-धाम,
कामना सब कामिनी की करी पूरन-काम ॥

(१८)

गर्विता करि गर्भ धारन अनत कीन पयान,
जाय कन्या रूप-धन्या फेरि पहुँची आन।
चाव सों प्रिय हाव सों अति भरी भाव विनोद,
देन चाही बालिका द्युतिमालिका मुनि गोद‡।

(१९)

देखि फल तप-भङ्ग-तरु को सामने मुनिराय
फेरि लीन्हों वदन, कर सों अरुचि अति दरसाय।
कहाँ वेश्या! कहाँ पूरनवशी विश्वामित्र!
उचित चित में खचित करिबो मैन-काठिन-चित्र*॥

६—रम्भा-शुक-संवाद।

श्रीशुक-रम्भा को भयो विदित शब्द-संग्राम।
ताही की कछु बातगी सुनिए शुभ-मति-धाम ॥

रम्भा— (१)

बीथी बीथी आम की कुञ्ज भावै;
कुञ्जै कुञ्जै कोकिला मत्त गावै।
गाये गाये मानिनी मान जावै;
जातै जातै काम को रङ्ग आवै ॥

शुक— (२)

बीथी बीथी साधु को सङ्ग पैये;
सङ्गै सङ्गै कृष्ण की कीर्ति गैये।
गाये गाये एकताई प्रकासै;
एकै एकै सच्चिदानन्द भासै ॥

र०— (३)

धामै धामै हेम की बेलि डोलै;
बेली बेली पूर्णिमा-चन्द बोलै।
चन्दै चन्दै मीन की मञ्जु जोरी†;
जोरी जोरी मैन-क्रीड़ा अथोरी ॥

शु०— (४)

धामै धामै रत्न-वेदी सुहावै;
वेदी वेदी भक्त-संवाद भावै।
बादै ही सों बोध चित्ते प्रकासै;
बोधै पाये शंभु की मूर्त्ति भासै ॥

र०— (५)

श्यामा कामा सुन्दरी रूपवारी;
गोरी भोरी काम की सी सँवारी।
वाकी बाहैं आपने कंठ डारी;
भेटी नाहीं तो वृथा देह धारी ॥

---

*इन तीन चरणों में रूपकातिशयोक्ति द्वारा अङ्ग-वर्णन है।
† रम्भा-तनु-तपोवन-वर्णन।
‡ चित्र देखो।

*मैन (काम) की कठिनता का चित्र।
† रूपकातिशयोक्ति।

शुक और रम्भा।

र०— (१९)

रूरी पूरी बदन दुति है चन्द्रमा तें सवाई,
नैना सैना, मदन सर में नाहि सो तीछनाई।
कारे भारे चिकुर जेहि के भृङ्ग के मानहारी
नारी प्यारी नर नहिँ रमी तौ वृथा देहधारी॥

शु०— (२०)

प्यारे प्यारे जुगुल पद हैं पद्म-शोभा-प्रहारी,
सेवैं लेवैं भरि हिय जिन्हैं सिन्धुजा प्राणवारी।
छाई भाई मुनि-गन-हिये जासु प्यारी उज्यारी॥
सोई जोई नर नहिं भजै सो वृथा देहधारी॥

र०— (२१)

बामा कामाभिरामा शशिवर-
वदना शीलधामा ललामा।
कस्तूरी-चर्चिताङ्गी मदन-मद-
भरी चञ्चला चारु श्यामा॥
बाँकी ऐसी तिया की चितवन
चित में काम नाहीं जगावै।*
नाहीं सन्देह देही वह जग
अपनो जन्म योंही गँवावै॥

शु०— (२२)

मज्जा मेदा बसा की अशुच
मल भरी चाम की तुच्छ थैली।
खोटी नौ छिद्र वारी बहु
नसन कसी अस्थि की वस्तु मैली॥
लोहू मूत्रादि जासों बहत
बहु सदा स्रोत दुर्गन्धवारे।
सेवैं सीमा घृणा की नर
जग नरकी नीच पापी नकारे॥

* * * * *

(२३)

(उपसंहार)

रागी त्यागी शब्द-संग्राम कीन्हों,
भोगी जोगी वार में चित्त दीन्हों।
हारी नारी, जीत पाई जतीने,
बाजे गाजे व्योम में मोद भीने॥

७—इन्दिरा।

(१)

सुनहु पूरन ब्रह्म-बिलासियो!
सकल-त्याग-सुदेश-निवासियो!
छिनहि को इत आतुर आइये,
प्रकृति की सुखमा लखि जाइये॥

(२)

कमलिनी* रमनी दृगरोचनी
रसवती युवती मृगलोचनी।
सलवणा ललना-कुल-सुन्दरा
लसति चित्र-सुहावन "इन्दिरा"॥

(३)

वदन-मण्डल पूरन चन्द्रमा,
सघन कुन्तल रैन मनोरमा।
मदन ज्योति प्रभा रवि प्रात की,
मिलि रहीं सुखमा दिन रात की॥

(४)

ललित बन्दन बिन्दु सुभाल पैं,
पुरित की पटली पर लाल है।
बिदित धौं तियभाग सुहाग है,
उदित सो अथवा अनुराग† है!

(५)

कलित मोतिन मञ्जु प्रकाशिका
ललित बेसर बेस सुनासिका।

---

* "काम (मदन) नाहीं जगावै"—यह रम्भा का अभिप्राय है और "कामना (इच्छा, वासना) ही जगावै—" इस अर्थ से शुक का पक्ष सिद्ध होता है। रम्भा की वाक्त्रुटि उसके भावी पराजय की अग्र-सूचना है।

*स्त्री-जाति-विशेष। †अनुराग का रङ्ग लाल होता है।

शु०— (६)

लक्ष्मी-पी की साँवरी मूर्त्ति प्यारी ,
देवी देवै मोद की देन हारी ।
चन्द्राभासी मन्द मुसक्यानवारी ,
ध्याई नाहीं, तौ वृथा देह धारी ॥

र०— (७)

वसन्त में पाय प्रसून-कुंजैं ;
सुगन्ध पै मोहि मलिन्द गुंजैं ।
विलास ऐसे थल अङ्गना को .
लहै वही भाग विशाल जाको ॥

शु०— (८)

प्रसून पीताम्बर माल राजैं ,
भृङ्गावली केश रसाल भ्राजैं ।
वसन्त में यों हरि मूर्त्ति ध्यावैं ,
ते सन्त आनन्द अनन्त पावैं ॥

र०— (९)

हेमन्त में बाल-मयङ्क ऐसी ,
है अङ्क में तो फिर सीत कैसी ।
पिया प्रिया की बतियाँ सुहावैं ,
आनन्द-भीनी रतियाँ बितावैं ।

शु०— (१०)

विहाय जो ध्यान प्रमोदकारी ,
खोवै विषै में सब रात भारी ।
ता हेतु लीन्हे जमदूत फाँसी ,
सचेत होवैं वनिता-विलासी ॥

र०— (११)

सुवर्णवर्णी तरुणी छबीली ,
प्रिया रँगीली सुमुखी रसीली ।
जो प्रेम ऐसो नहिँ बाम को है ,
तारुण्य तो ये केहि काम को है ?

शु०— (१२)

होवै जरा में बल-बुद्धि हानी ,
मिली तपस्या हित ही जवानी ।
उद्योग नाहीं शुभ काम को है ,
निकाम तो ये तनु चाम को है ॥

र०— (१३)

कुरङ्ग सी जासु चितौन प्यारी ,
सुरङ्ग-बिम्बाधर-जुग्मवारी ।
अनङ्ग कीसी सुकुमार नारी .
न सङ्ग होवै बिन भाग भारी ॥

शु०— (१४)

जाकी लुनाई जग में बसी है ,
दसौ दिसा में सुखमा लसी है ।
पुनीत पूरी महिमा गँसी है ,
बिना भजे ताहि सबै हँसी है ॥

र०— (१५)

सुहावनी गोल कपोल वारी ,
बुलाक बाले नथ लोल वारी ।
सुकामिनी काम किलोल वारी ,
मिलै बड़े भाग अमोल नारी ॥

शु०— (१६)

महेश ही को दिन रैन ध्याना ,
महेश ही पै मन ये दिवाना ।
महेश ही जोग विचार ज्ञाना ,
"अमोल" तो है बस भक्त बाना ॥

र०— (१७)

बारा अलंकार सिँगार सोरा ,
बिलोकि जाके मन होय भोरा ।
जो, हाय, स्वीकार करै न वाहि ,
ताको अरे जन्म गयो वृथाहि ॥

शु०— (१८)

सोरा कला चन्द्र दिनेश बारा ,
वारैं गिरा शेष लहैं न पारा ।
आनन्द को रूप प्रमोदकारी ,
का तासु आगे बनिता बिचारी ?

कादम्बरी ।

छबि सुहाति असीम प्रशंसिनी,
मिलति कीर-बधू-सँग हंसिनी !

(६)

अलक की लट कान समीप है,
चहति नागिनि सेवन सीप है।
मदन चाप कि धौं अभिराम है,
शिथिल जासु लसै गुन* श्याम है॥

(७)

सुकवि ग्रीव बखानत कम्बुसी,
ध्वनि सुरध्वनि के बर-अम्बुसी।
सदुपमा पर एक अनूप है
पिक सुहात कपोत-स्वरूप है॥

(८)

लसति नील सुहावन कञ्चुकी,
अरुणिमा तेहि पै पट मञ्जुकी।
शिखर-आश्रित श्री रसराज† पै,
रँग जमाय रह्यो अनुराग है॥

(९)

चहति बोलन सी रसलीन है,
बजन चाहतसी बरबीन है।
हँसन चाहति सी नव-कामिनी,
लसन चाहति सी छिति दामिनी॥

(१०)

निरखि चित्र हियो हरसात है।
लगति सी रस की बरसात है।
प्रबलता छबि की सरसात है,
कुशलता "रवि"‡ की दरसात है॥

*डोरी। †रसराज (शृङ्गार) का रङ्ग श्याम है। ‡रविवर्म्मा चित्रकार।

(११)

*बस करौ बस पूरन है कथा,
निरखि के छबि वर्णन की प्रथा।
उठत प्रश्न यही प्रति बार है
कह मनोहरता बिच सार है॥

(१२)

विषय के बिष में मनमोहनी
अमृत सी छबि है अति सोहनी।
अनृत आकृति प्राकृत दम्भ है
प्रकृति में प्रियता सब ब्रह्म है†

८—कादम्बरी।

(१)

करिके सुर तालन को बिसतार
सितार प्रवीण बजावती है।
परि पूरन राग हू के मन में
अनुराग अपार जगावती है॥
गुनआगरी भाग सोहाग भरी
नव नागरी चाव सों गावती है।
छबिधाम है नाम है "कादम्बरी"
धुनि कादम्बरी‡ की लजावती है॥

(२)

मन खैंचति तार के खैंचत ही,
उमहै जब "जोड़" बजावन में।

*यद्यपि यह शृङ्गार की कविता है तथापि कवि वेदान्ती है। इसी लिए कविता का आरम्भ और अन्त इस प्रकार लिखा गया।

†विषय विष है। उसमें अमृत सम सौन्दर्य्य है। उसमें "आकार" जो है वह मिथ्या प्रकृति का दम्भ है और प्रकृति में जितनी प्रियता है वह ब्रह्म है।

‡कोकिला।

उमगैं मधुरे सुर की लहरी,
गहरी "गमकैं" * दरसावन में ॥
चपलाई हरै थिरता चित की,
अँगुरी "मिजराव" चलावन में
मन-भावन गावन के मिस बाल
प्रवीन है चित्त चुरावन में ॥

(३)

एमन सोरठ देस हमीर
बहार बिहाग मलार रसीली।
शंकरा सोहनी भैरव भैरवी
गूजरी रामकली सरसीली ॥
गैार बिलावल जोगिया सारँग
पूरिया आसावरी चटकीली।
बोल समै के बजायो करै
तिय गायो करै मिलि तान सुरीली ॥

(४)

दृग सौं हैं सितार के मोहैं मनै,
गति ध्यान में सोहैं चढ़ी भ्रुव वेली।
सुर भेद भरे परदे तिन में,
भई जाति सी लीन प्रवीन नवेली ॥
कर बाम की बाम की चञ्चल आँगुरीं
देखि फबै उपमा ये अकेली।
नट-राज मनोज की नाचैं मनो,
इकतार पै पूतरियाँ अलबेली ॥

(५)

लखि कोमल आँगुरी नागरी की,
अति आगरी तार† बजावन में।
अनुमान रचै मन पूरन को,
उपमान की खोज लगावन मेंः—
दल मञ्जु अशोक को कम्प समेत,
वृथा कवि लागे बतावन में।
सुर ताल थली यह कञ्जकली,
भली नाचती राग के भावन में ॥

(६)

उर प्रेम की जोति जगाय रही,
मति को बिन यास घुमाय रही ॥
रस की बरसात लगाय रही,
हिय पाहन से पिघलाय रही ॥
हरियाले बनाय कै रूखे हिये,
उतसाह की पैंगै झुलाय रही।
इकराग अलापि के भाव भरी,
खटराग * प्रभाव दिखाय रही ॥

६—केरल की तारा।

(१)

वीर-मण्डल की महाविद्या महामाया नहीं।
बालि की वनिता न समझो जीव की जाया नहीं ॥
सत्यसागर सूरमा हरिचन्द की रानी नहीं।
आपने यह पाँचवीं तारा अभी जानी नहीं ॥

(२)

चित्र-विद्या-विज्ञ रविवर्म्मा दिखाते हैं इसे।
भाव ज्यों के त्यों दिखाने और आते हैं किसे ?
चित्र से वढ़कर चितेरे की बड़ाई कीजिए।
जी लगाकर जी लगाने की कथा सुन लीजिए ॥

(३)

कल इसी के योग से थिर भाव मेरा खो गया।
सो गया तो स्वप्न में संकल्प पूरा हो गया ॥

---

* सितार में "जोड़" का बजाना श्रेष्ठ है; और उसमें "मीड" (तार खींच कर स्वर चढ़ाना) और "गमक" (गहराई से शब्द निकालना) प्रधान वस्तु हैं—"मिज़राब" की चपलता उसमें शोभा देती है।

† दाहिने हाथ की प्रदेशिनी से अभिप्राय है।

* छै राग के प्रभाव क्रम से :—दीपक से दीपक का जल उठना, "भैरव" से कोल्हू का घूमना, "मेघ" से वर्षा का होना, "माल कोश" से पत्थर का पिघलना, "श्री" से सूखे वृक्ष का हरा होना, "हिण्डोल" से झूले की पैंग का चढ़ना, इन्हीं है प्रभावों का आभास इस सवैये में है।

केरल की तारा।

वसन्तसेना ।

ध्यान में भरपूर केरल देश की छवि छा गई ।
मुसकराती सामने प्रत्यक्ष तारा आगई ॥

(४)

माँग देकर पाटियों में पीठ पर चोटी पड़ी ।
फाड़ मुँह फैलाय फन छबिराशि पै नागिन अड़ी ॥
भाल पर चाहक चकोरों का बड़ा अनुराग था ।
क्यों न होता चन्द्र का वह ठीक आधा भाग था ॥

(५)

भ्रू नहीं मैंने कहा रसराज के हथियार हैं ।
काम के कमठा किये तारुण्य की तलवार हैं ॥
मीन, खंजन मृग मरें दृग देह-द्रुम के फूल हैं ।
इन्दु, मङ्गल, मन्द से तीनों गुणों के मूल हैं ॥

(६)

फूल अंबर के न कानों को बता कर चुप रहा ।
रूप-सागर के सजीले सीप हैं यों भी कहा ॥
गोल गुदकारे कपोलों को कड़ी उपमा न दी ।
पुलपुली मौमन पड़ी फूली कचौड़ी जान ली ॥

(७)

नाक थी किंवा कुटो छवि की छुपाकर पै नई ।
लौर लटकन की कि बिजली लौ दिया की बन गई ॥
खिलखिला कर मुख बतीसी को कहा बेलाग यों ।
कुन्द की कलियाँ कमल के कोश में छिपती हैं क्यों ?

(८)

सब जड़ाऊ भूषणों के सोहने शृङ्गार थे ।
कण्ठ में केवल मनोहर मोतियों के हार थे ॥
पीन कृश, उकसे कसे, कोमल कड़े, छोटे बड़े ।
गुप्त सारे अङ्ग साड़ी की सजावट में पड़े ॥

(९)

देख उसको मोदमद से मत्त मैं भी बन गया ।
कुछ दिनों तक साथ रहने का इरादा ठन गया ॥
था समय बरसात, चारों ओर घन घिरने लगे ।
बे-धड़क वह और मैं उस देश में फिरने लगे ॥

(१०)

देख बेपुर और कालीकट नगर सिरमौर को ।
चल पड़े रत्नागिरी, टेलीचरी मँगलौर को ॥
गैल में नाले, नदी, नद, स्वच्छ-जल-पूरित पड़े ।
सैकड़ों एला, सुपारी, नारियल, केला खड़े ॥

(११)

फूल नाना भाँति के जङ्गल, पहाड़ों में खिले ।
सिंह, भालू, भेड़िये, चीते, हिरन, हाथी मिले ॥
चारु चन्दन के लिए ऊँचे मलयगिरि पर चढ़े ।
सूँघते सौरभ सने श्रीखण्ड को आगे बढ़े ॥

(१२)

कालड़ी के पास प्यारी पूरणा भी आ गई ।
सिद्ध शङ्कर देव की जन्मस्थली मन भा गई ॥
न्हा चुके सुसता चुके सन्ध्या-हवन भी कर लिया ।
बाग़ में डेरा दिया, भोजन किया, पानी पिया ॥

(१३)

मैं बिछौने पर पड़ा वह सुन्दरी गाने लगी ।
सोहनी बरसात में पीयूष बरसाने लगी ॥
वार चकवा रो रहा, चकई नदी के पार थी ॥
वेदना उनको विरह की हाय विष की धार थी ॥

(१४)

बस यहाँ तक देखते ही आँख मेरी खुल गई ॥
स्वप्न के सुख की अलौकिक मधुर मिश्री घुल गई ॥
यह उसी का चित्र है तावीज़ में मढ़ लीजिए ।
मन लगा कर फिर दुबारा पद्य यह पढ़ लीजिए ॥

———

१०—वसन्तसेना ।

(१)

लैला के शुतर का न जरस बजेगा यहाँ
ख़ाक न उड़ेगी कहीं मजनूँ के बन की ।
शीरीं के कलाम की भी तलख़ी चखोगे नहीं
टाँकी न पहाड़ पै चलेगी कोहकन की ॥

१—कोहकन = फ़रहाद ।

कामकन्दला के नाच गाने की लताफ़त में
गाँठ न खुलेगी माधवानल के मन की।
कञ्चन की चाह छोड़ कञ्चनी अकिञ्चन को
शङ्कर देखावेगी लगावट लगन की॥

(२)

विक्रम के आगे की है नायिका नवेली यह
शूद्रक रचित मृच्छकटिक ने पाई है।
स्वामिनि मदनिका की, भामिनि रदनिका की,
धूता की सवति, वारवनिता की जाई है॥
मोंसी रोहसेन की है, नाम है "वसन्त-सेना",
चारुदत्तजी की प्राणवल्लभा कहाई है।
राजा रविवरमा की चित्र-चातुरी ने आज
शङ्कर "सरस्वती" के अङ्क में दिखाई है॥

(३)

चित्र की विचित्रता में अङ्गों की गठन पर
रसिक सुजान भरपूर ध्यान दीजिए।
कोमल-कलेवरा की सुन्दर सजावट के
रङ्ग ढङ्ग देखिए, प्रसङ्गरस पीजिए॥
जैसी सुन पाई ठीक वैसीही बनाई उस
चतुर चितेरे की बड़ाई बड़ी कीजिए।
मिसरी के साथ बाँस फाँस कासा मेल मान
शङ्कर की भद्दी कविता भी पढ़ लीजिए॥

(४)

पूरण सुधाकर के अङ्क में कलङ्क बसे
खारी जलकोश रतनाकर ने पाया है।
भानु भगवान काले धब्बों से धबीले रहैं
स्वामी श्यामसुन्दर के सङ्ग योग-माया है॥
सुन्दरी वसन्तसेना बाई का विशुद्ध मन
पालक महीपति के साले का सताया है।
शङ्कर की रचना में ठीक इसी भाँति हाय
भद्दापन दूषण बनारसी समाया है॥

(५)

ज्वारी को छुड़ाय कर चोर का बसाया घर,
दूत की दया से मणिमाला मिली यार की।
काम की सताई, आई पीतम ने पाई बाई,
नथुनी उतारली बढ़ाई बेलि प्यार की॥
प्रेमरस पीती रही, मार सही जीती रही,
शङ्कर जलादी जड़ कोटपाल जार की।
राजबल पाया, प्राण प्यारे को बचाया, अब
दुलही कहाती है पवित्र परिवार की॥

१—शूद्रक = मृच्छकटिक नाटक का रचयिता।

मदनिका = वसन्तसेना की दासी।

रदनिका = चारुदत्त की दासी।

धूता = चारुदत्त की स्त्री।

रोहसेन = चारुदत्त का पुत्र।

वसन्तसेना = एक वारवनिता की बेटी जिसका यह चित्र है।

चारुदत्त = वसन्तसेना का एक अकिञ्चन मित्र।

४—पालक = उज्जैन का राजा, इसका साला।

संस्थानक = शहर का कोतवाल, वसन्तसेना का महावैरी।

५—ज्वारी = संवाहक नामक एक ब्राह्मणपुत्र जो बौद्ध-विरक्त बन गया था। वसन्तसेना ने उसको अपना स्वर्ण-कङ्कण दे कर अन्य ज्वारियों के बन्धन से छुड़ाया था।

चोर = शार्विलक नाम का एक कामी पुरुष जिसने चारुदत्त का घर फोड़ कर वसन्तसेना की धरोहर ज़ेवर चुराये और मदनिका को लाकर दिये। वसन्तसेना ने वे ज़ेवर और अपनी दासी मदनिका उसी चोर को दे दी।

दूत = मैत्रेय, चारुदत्त का मित्र जो धूता की माला लेकर गहने चोरी जाने पर वसन्तसेना के पास आया था।

मार सही जीती रही = वसन्तसेना चारुदत्त के पास बाग़ में जाते समय सवारी के बदल जाने पर संस्थानक के जाल में पड़ी। उसने इसको फांसी देकर पत्तों के ढेर में गाड़ दिया और चारुदत्त को उसका हत्यारा सिद्ध करके न्यायालय से सूली का दंड दिलाया। वसन्तसेना पत्तों के ढेर में कुलबुलाई। उसे बौद्ध विरक्त ने निकाला। पालक का राज्य छीन कर आर्य्यक राजा बना। उस नये राजा ने चारुदत्त को बचाया और वसन्तसेना को बधू की पदवी प्रदान की। धूता सती होने से बची। रोहसेन अनाथ न हुआ।

(६)

सोहनी सुरङ्ग सारी कुरती किनारीदार
कामदार कञ्चुकी करेब की कसी रहै।
ठौर ठौर पूषण* से भूषण प्रकाश करें
ओज की उमङ्ग अङ्ग अङ्ग में लसी रहै॥
बातें अनुरागभरी शील सभ्यता के साथ
शङ्कर धनी की धज ध्यान में धसी रहै।
चित्र सी विचित्र महासुन्दरी वसन्तसेना
मित्र चारुदत्त के चरित्र में बसी रहै॥

(७)

सीस पै पसार फन लङ्क लौं लपेटा मार
लट की लटक दिखलाती बलखाती थी।
माँग मुख फाड़, काढ़ मोतियों के दाने दाँत
झूमर की जीभें लप लप लपकाती थी॥
शङ्कर शिरोमणि की ज्योति का उजाला पाय
रोषभरी प्यारे रूप-कोष को रखाती थी।
बात वेणी नागिन की तब की कही है जब
नाचती वसन्तसेना बाई गीत गाती थी॥

(८)

कज्जल के कूट पर दीप-शिखा सोती है कि
श्याम घनमण्डल में दामिनी की धारा है।
यामिनी के अङ्क में कलाधर की कोर है कि
राहु के कबन्ध पै कराल केतु तारा है॥
शङ्कर कसौटी पर कञ्चन की लीक है कि
तेज ने तिमिर के हिये में तीर मारा है।
काली पाटियों के बीच मोहनी की माँग है कि
ढाल पर खाँडा कामदेव का दुधारा है॥

(९)

उन्नत उरोज यदि युगल उमेश हैं तो
काम ने भी देखो दो कमानें ताक तानी हैं।
शङ्कर कि भारती के भावने भवन पर
मोह महाराज की पताका फहरानी है॥

*पूषण = सूर्य्य।

किंवा लटनागिनी की साँवली सँपेलियों ने
आधे बिधु-बिम्ब पै विलास विधि-ठानी है।
काटती हैं कामियों को काटती रहेंगी कहो
भृकुटी कटारियों का कैसा कड़ा पानी है॥

(१०)

तेज न रहेगा तेजधारियों का नाम को भी,
मङ्गल मयङ्क मन्द मन्द पड़ जायँगे।
मीन बिन मारे मर जायँगे सरोवर में
डूब डूब शङ्कर सरोज सड़ जायँगे॥
चौंक चौंक चारों ओर चौकड़ी भरेंगे मृग,
खञ्जन खिलाड़ियों के पङ्ख झड़ जायँगे।
बोलो इन अँखियों की होड़ करने को अब
कौन से अड़ीले उपमान अड़ जायँगे॥

(११)

आँख से न आँख लड़ जाय इसी कारण से
भिन्नता की भींत करतार ने लगाई है।
नाक में निवास करने को कुटी शङ्कर कि
छवि ने छपाकर की छाती पै छवाई है॥
कौन मान लेगा कीर-तुण्ड की कठोरता में
कोमलता तिल के प्रसून की समाई है।
सैंकड़ों नकीले कवि खोज खोज हारे पर
ऐसी नासिका की और उपमा न पाई है॥

(१२)

अम्बर में एक यहाँ दौज के सुधाकर दो
छोड़ें वसुधा पै सुधा मन्द-मुसकान की।
फूले कोकनद में कुमुदनी के फुल खिलें
देखिए विचित्र दया भानु भगवान की॥
कोमल प्रवाल के से पल्लवों पै लाखा लाल
लाखे पर लालिमा विलास करे पान की।
आज इन ओठों का सुरंगी रस पान कर
कविता रसीली भई शङ्कर सुजान की॥

(१३)

आनन-कलानिधि में दूनी कला देख देख
चाहक-चकोरों के उदास उर ऊलेंगे।

दाड़िम के दानी फल दाने उगलेंगे नहीं
कुन्द कलियों के झुण्ड झाड़ में न भूलेंगे॥
सीप के सपूतों पर शोभा न करेंगी प्यार
शङ्कर चमेली और मोतिया न फूलेंगे।
दाँतों की बतीसी मणि-मालिका हँसी की इस
दामिनी की दूती को न देवता भी भूलेंगे॥

(१४)

शंख जो बराबरी की घोषणा सुनावेगा तो
नार कट जायगी उदर फट जायगा।
शङ्कर कली की छबि कदली दिखावेगा तो
ऐंठ अट जायगी छवाउ छट जायगा॥
कानन में कोकिल सुराग सरसावेगा तो
होड़ हट जायगी घमंड घट जायगा।
कोई कण्ठ-कंठी इस कण्ठ की बँधावेगा तो
हुंडी पट जायगी प्रसाद बट जायगा॥

(१५)

उन्नति के मूल ऊँचे उर अवनीतल पै
मन्दिर मनोहर मनोज के यमल हैं।
मेल के मनोरथ नथेंगे प्रेमसागर को
साधन उतङ्ग युग मन्दर अचल हैं॥
उद्धत उमङ्ग भरे यौवन खिलाड़ी के ये
शङ्कर से गोल कड़े कन्दुक युगल हैं।
तीनों मत रूखे रसहीन हैं उरोज पीन
सुन्दर शरीर सुरपादप के फल हैं॥

(१६)

कञ्ज से चरण कर, कदली से जंघ देखो,
क्षुद्रतण्डुला से दो उरोज गोल गोल हैं।
कृष्णकुण्डला से कान, भृङ्गवल्लभा से दृग,
किंसुक सी नासिका, गुलाब से कपोल हैं॥
चञ्चरीक पटली से केश, नई कोंपल से
अधर अरुण, कलकण्ठ के से बोल हैं।
शङ्कर वसन्तसेना बाई में वसन्त के से
सोहने सुलक्षण अनेक अनमोल हैं॥

(१७)

कंचनी की रीति से रही न छैल छोकड़ों में
कुल-दुलहिन के से काम करती रही।
धीरता उदारता सुशीलता प्रवीणता से
शङ्कर प्रसिद्ध निज नाम करती रही॥
अन्त लों भलाई को न भूली किसी भाँति से भी
प्रेम का प्रचार आठों याम करती रही।
चित्र के समान कर मस्तक को लाय लाय
ज्ञानी गुरु लोगों को प्रणाम करती रही॥

(१८)

बाग़ की बहार देखी मोसिमे बहार में तो
दिले अन्दलीप को रिझाया गुलेतर से।
हाय चकराते रहे आसमाँ के चक्कर में
तौ भी लौ लगी ही रही माह की महर से॥
आतिशे मुसीबत ने दूर की कुदूरत को
बात की न बात मिली लज्ज़ते शकर से।
शङ्कर नतीजा इस हाल का यही है बस
सच्ची आशिक़ी में नफ़ा होता है ज़रर से॥

११—परशुराम।

(१)

शिखा-सूत्र के संग शस्त्र का मेल विलोको;
निपट विप्र घर-बढ़े न जानो सरल द्विजों को।
पूर्व-काल में वेद-मंत्र थे कड़खे रन के;
सेना नायक, शूर, कुशल द्विज, ऋषि, मुनि वन के॥

(२)

लख सरोष स्वाधीन भाव इस मुख मंडल का
मिलता है सब पता पूर्व पुरुषों के बल का।
क्षात्र-तेज यों ब्रह्म-तेज में यहाँ भरा है
शांत-वीर-रस कटक संग मानों उतरा है॥

१६—क्षुद्रतण्डुला = पोस्त का फल, अफ़ीम की बोंड़ी।
कृष्णकुण्डला = पसेंदू का फूल, कृष्णकान्ता।
भृङ्गवल्लभा = गुले नरगिस, देवदारिका।

परशुराम ।

घबराई-सी श्रम के मारे;
शिथिल खड़ी है विटप-सहारे ॥

(६)

तो भी दृष्टि-भाव आतुर है;
अधरों पर मुसक्यान मधुर है।
कंचन सा उज्ज्वल मुख-मण्डल;
करता है सहसा चित चंचल ॥

(७)

काले केश घने सटकारे,
लहराते हैं कुण्डल मारे।
गोरी गोल गढ़ी मृदु बाँहें,
शोभा की मानों सीमा हैं ॥

(८)

फूलदान अटका अँगुली से,
आकर्षित मानों बिजली से।
उठ से रहे फूल हैं ऊपर,
पङ्कज-तुल्य चूमने को कर ॥

(९)

कटि है कसी कदाचित उर में;
खो न जाय यह कहीं डगर में!
पाओं की सुकुमार अँगुलियाँ,
शोभित मानों चंपक-कलियाँ ॥

(१०)

यदपि अहल्या यहाँ खड़ी है,
मनसा मुनि के पास अड़ी है।
इस दुचिताई की छवि बाँकी;
जाती नहीं सहज ही आँकी ॥

१३—व्यास-स्तवन ।

(१)

शुभ-सौम्य मूर्त्ति तेजोनिधान
हो अन्य भानु ज्यों भासमान।
ध्यानस्थ स्वस्थ सद्धर्म्म-धाम
भगवान व्यास! तुमको प्रणाम ॥

(२)

तव गुण अनन्त भू-कण समान
है कौन उन्हें सकता बखान?
उपकार याद कर तव अपार
होते बुध विस्मित बार बार ॥

(३)

कर ज्ञान-भानु तुमने प्रकाश
अज्ञान-निशा कर दी विनाश।
कर तव शिक्षामृत-पान शुद्ध
संसार हुआ शिक्षित प्रबुद्ध ॥

(४)

क्या राजनीति, सामान्य नीति,
क्या धर्म्म-कर्म्म, क्या प्रीति-रीति।
क्या भक्ति-भाव, व्यवहार वेश,
उपदेश दिये तुमने अशेष ॥

(५)

होता है जग में जो सदैव,
जो हुआ और होगा तथैव।
कथनानुसार तव सो समग्र
होता है, होगा, हुआ अग्र ।

(६)

जो दिखलाया तुमने समक्ष
हैं वही देख सकते सुदक्ष।
तुमने न किया हो जिसे व्यक्त
सब उसे बताने में अशक्त ॥

(७)

है विषय अहो! ऐसा न एक
जिसका न किया तुमने विवेक।
रचनायें कवियों की प्रशस्त
उच्छिष्ट तुम्हारी हैं समस्त ॥

(३)

भौंहें तनी, कटाक्ष मगन मन, निश्चय जी का
हम सबको संवाद सुनाते हैं यह नीका—
गहो आप बल, बुद्धि, तेज, साहस, प्रभुताई
चल जीवन के लिए करो मत आश पराई ॥

(४)

पर सहसा यह रूप देख होता है विस्मय—
आर्य लोग क्या एक समय थे ऐसे निर्भय !
क्या हम सब जो आज बने हैं निर्बल कामी
रहते थे स्वाधीन समर में होकर नामी ॥

(५)

जो हो, यह सब परशुराम ने कर दिखलाया ;
क्षत्रिय-कुल का रक्त नदी सा शुद्ध बहाया ।
नहीं एक दो बार, बार इक्कीस समर में
सोये क्षत्रिय-वीर करोड़ों काल-उदर में ॥

(६)

अहंकार उद्दंड निरंकुश क्षत्रिय-गन का
लगा न मुनि को भला ; सोच में माथा ठनका ।
विवश रक्ष्य ने युद्ध रक्षकों से तब ठाना
भाला से भिड़ भूल गया भाला निज बाना ॥

(७)

विद्या-मय बल देख निरा बल पल में भागा ;
समर-सेज पर सोय हाय ! फिर कभी न जागा ।
तो भी मुनि ने राज्य-लोभ में तजी न वेदी ;
बार बार जय-भूमि सहज विप्रों को दे दी ॥

(८)

लिये एक में शस्त्र, अन्य कर में कुश पानी,
जीत-दान के लिए रहे तत्पर मुनि ज्ञानी ।
पृथ्वी कंपित हुई नाम से परशुराम के ;
सहमे सदा सभीत निवासी देव-धाम के ॥

(९)

भली नहीं है किसी काल में विप्र-अवज्ञा ;
द्विज मृदु हो झट कुपित करें हैं शाप-प्रतिज्ञा ।
जो होते ये कहीं सबल सब, तो पल-भर में
लाते सब संसार खींच कर एक नगर में ॥

(१०)

हुआ समय का फेर हाय ! पलटी परिपाटी ;
जो थे कभी सुमेरु आज हैं केवल माटी ।
क्षत्रिय-कुल निर्वंश सहज में करनेहारे
परशुराम मुनि निरे राम बालक से हारे ॥

१२—अहल्या ।

(१)

काम-कामिनी सी छवि-राशी ;
उपवन की लहलही लता-सी ।
गौतम मुनि की यह नारी है ;
पति को प्राणों से प्यारी है ॥

(२)

रहती है यह मुनि-संग वन में ;
प्रेम-गर्व की माती मन में ।
पति की प्रबल-प्रीति के बल पर ;
कानन इसे नगर है सुन्दर ॥

(३)

मुनि की दिव्य देह की छाया ;
नहीं चाहती यह जग-माया ।
पर्ण-कुटी ही इसे महल है ;
राज-भोग-सम स्वामि टहल है ॥

(४)

पति भी निरत भजन-पूजन में ;
प्रेम-बँधे रहते हैं वन में ।
पत्नी पुष्प बीन, रच धूनी ;
सहज भक्ति पाती है दूनी ॥

(५)

आज अहल्या बहुत थकी है ;
फूल बीनने में भटकी है !

रत्नावली।

रत्नावली जलधि में यह दर्शनीय ; किंवा हुई प्रकट चन्द्रकला द्वितीय।
या हो गई प्रकट है वड़वाग्नि-ज्वाला ; है कान्तिमान अथवा यह कञ्जमाला ॥

(८)

कर वेदों का तुमने विभाग
रक्षा की उनकी सानुराग ।
वेदान्त-सूत्र रच कर अमोल
हैं दिये हृदय के नेत्र खोल ॥

(९)

सुन कर जिनका शुभ सदुपदेश
रह जाता कुछ सुनना न शेष ।
शुचि, शुद्ध, सनातन-धर्म्म-प्राण
सो रचे तुम्हीं ने हैं पुराण ॥

(१०)

बुधजन-समाज जिसका तमाम
है रक्खे पञ्चम वेद नाम ।
इतिहास महाभारत पुनीत
सो रचा तुम्हीं ने है प्रतीत ॥

(११)

हो जाता धर्म्म सहाय-हीन
सब पूर्व-कीर्त्ति होती विलीन ।
स्वच्छन्द विचरते पाप, ताप,
लेते न जन्म यदि ईश ! आप ॥

(१२)

करता शुभ कर्म प्रचार कौन ?
सिखलाता वेदाचार कौन ?
हरता तुम विन त्रयताप कौन ?
दिखलाता पूर्व-प्रताप कौन ?

(१३)

करने को नव सन्मार्ग लुप्त
हैं हुए यत्न बहु प्रकट, गुप्त ।
वे हुए किन्तु निष्फल, निषिद्ध,
हो क्यों कर सत्य असत्य सिद्ध ?

(१४)

हिन्दुत्व हिन्दुओं का प्रधान
है अब तक भी जो विद्यमान ।
हे जगद्वन्द्य, करुणा-निधान !
हो तुम्हीं एक इसके निदान ॥

(१५)

जो आर्य्य-जाति का कीर्त्ति गान
पाता है जग में मुख्य मान ।
है उसका जो गौरव महान
सो किया आपही ने प्रदान ॥

(१६)

वर्णन करते भी बार बार
रहते हैं तव गुण-गण अपार ।
घन चाहे जितना भरें नीर
घटता न किन्तु सागर गभीर ॥

(१७)

है हमें तुम्हारा अमित गर्व
है तव कृतज्ञ संसार सर्व ॥
है भारत धन्य अवश्यमेव
तुम हुए जहाँ अवतीर्ण देव !

१४—रत्नावली ।

(१)

देखो है प्रतिमा सजीव छवि की रत्नावली सुन्दरी,
राजा विक्रमबाहु की प्रिय सुता वामोरु बिम्बाधरी।
दैवात् आज समुद्र में पतित हो है क्लेश पाती यह,
मानों देव-वधू गिरी गगन से यों है सुहाती यह ॥

(२)

काले और विशाल बाल बिखरे कल्लोल के कारण,
फूलों के सम फेन-जाल जिनमें शोभा किये धारण ।
माला और दुकूल भी ललित हैं होके जलान्दोलित;
आपद्ग्रस्त तथापि मञ्जुल-मुखी रत्नावली शोभित ।

(३)

आभा-पूर्ण मनोज्ञ नील मणि से हैं दिव्य दोनों चख;
हीरों के सम दाड़िमी दशन हैं, मुक्ताफलों से नख ।

त्योंही विद्रुम-पद्मराग सम है बिम्बोष्ठ-शोभा भली ;
श्रीसंयुक्त सुवर्ण-गात्रि यह यों है ठीक रत्नावली ॥

(४)

श्री-श्रीहर्ष नरेश की विदित है रत्नावली नाटिका;
है साहित्य-विभाग में वह यथा शृङ्गार की वाटिका
है सारा इसका चरित्र उसमें आनन्ददायी महा;
देते हैं हम सार आज उसका थोड़ा इसी से यहाँ ॥

(५)

"होवेगा इसका विवाह जिससे कल्याणकारी सदा,
होगा निश्चय सार्वभौम-नृप सो पाके सभी सम्पदा"।
ऐसा सिद्ध वर-प्रदान सुन के रत्नावली के लिए,
कौशाम्बी-पति वत्सराज उसके लाभाभिलाषी हुए ॥

(६)

ब्याही विक्रमबाहु की पर उन्हें थी भानजी पूर्व ही;
पुत्री उज्जयिनी-महीप वर की थी मुख्य रानी वही।
अस्तु श्रीयुत वत्सराज नृप के बाभ्रव्य दूत-प्रति
की आपत्ति यही प्रकाश उसने जो योग्य भी थी अति ॥

(७)

देखा स्वप्रभु-कार्य्य को बिगड़ते बाभ्रव्य ने यों जब
स्वामी के हित साधनार्थ उसने यों वञ्चना की तब।
"रानी तो सहसाग्नि में जल गई दुर्दैव के कारण;
स्वामी को इस शोक से न मिलती है शान्ति एक क्षण"॥

(८)

राजा ने सुन दूत के वचन ये जी में दुखी होकर-
सोचा यों मन में विचार करके सम्पूर्ण पूर्वापर।
"दूँगा मैं अब वत्सराज कर में रत्नावली जो नहीं,
तो सम्बन्ध समस्त अस्त उनसे होगा हमारा यहीं"॥

(९)

मन्त्री श्रीवसुभूति-सङ्ग उसने रत्नावली को तब,
भेजा सिंहलदेश से कर विदा दे योग्य शिक्षा सब।
थे किन्तु द्रुत सिन्धु पार करते जाते चले ये जब,
नौका टूट गई तदीय सहसा; भावी रुकी है कब ?॥

(१०)

ऐसी घोर विपत्ति के समय में रत्नावली ने वहाँ
पाके एक सुकाष्ठ-खण्ड उससे पाया सहारा महा।
व्यापारी फिर एक सिन्धु-पथ से जो आ रहा था घर,
ले आया निज देश को वह इसे बैठाल नौका पर ॥

(११)

कौशाम्बी-पति-योग्य जान इसको मोद-प्रदा सर्वथा,
सौंपी भूपति मन्त्रि को वणिक ने सारी सुना के कथा।
मन्त्री ने रनिवास में तब इसे दी सुन्दरी जान के,
रानी ने नृप से बचा कर वहाँ रक्खी सखी मान के ॥

(१२)

कन्दर्पोत्सव में परन्तु इसने भूपाल का दर्शन
पाया ज्यों दिवसान्त में कुमुदिनी चन्द्रांशु-संस्पर्शन
साक्षात् काम-महीप जान उनकी की वन्दना प्रीति से,
रङ्गों से फिर एक चित्र उनका खींचा यथा रीति से ॥

(१३)

राजा का वह चित्र देख इसकी प्यारी सखी ने वहीं
इसको भी लिख यों कहा "रीति बिना क्या काम देखा कहीं?
हैं वत्सेश्वर कामदेव यदि तो रत्नावली है रति"-
आली की सुन बात यों वह हुई अत्यन्त लज्जावती ॥

(१४)

बातें यों घन-कुञ्ज में कर रही थीं प्रेम से ये जहाँ
बैठी पादप पै उन्हें सुन रही थी एक मैना वहाँ।
वैसे ही कहते उसे निज कथा ज्योंही इन्होंने सुना
दौड़ीं तत्क्षणही उसे पकड़ने, वे पा सकी किन्तु ना ॥

(१५)

कौशाम्बी-पति भी उसी समय थे उद्यान में डोलते;
आलोकी वह सारिका नृपति ने आश्चर्य्य से बोलते।
हो उत्कण्ठित मार्ग में उलझते नाना लता-पुञ्ज में
पीछे ही उसके नृपाल चल के आये उसी कुञ्ज में ॥

(१६)

पाई चित्रपटी वहाँ नृपति ने रत्नावली की वही ;
शोभा देख तदीय मोहित हुए न प्रेम-सीमा रही !

अभिमन्यु और उत्तरा।

हो तल्लीन विलोक चित्र फिर जो बातें उन्होंने कहीं;
श्रीहर्ष-प्रतिभा-प्रकाशन बिना वे हैं दिखाती नहीं।

(१७)

"लीलापूर्वक बार बार जिसने की नम्र पक्षा, तथा,
मेरा जो अति पक्षपात करती मोदप्रदा सर्वथा।
मेरे मानस में प्रविष्ट अतिही जो राजहंसी सम,
है ऐसी यह कौन चित्र-लिखिता बाला अनन्योपम॥

(१८)

"ब्रह्मा ने मुख चन्द्र-तुल्य इसका होगा बनाया जब;
यों चातुर्य्य-कला-कलाप उसने होगा दिखाया जब।
होने से निज आसनाम्बुज अहो! तत्काल विन्मीलित,
अच्छी भाँति वहाँ कभी रह सका होगा न धाता स्थित"॥

(१९)

लेने चित्रपटी वही थकित सी मातङ्ग की चाल में,
बाला सागरिका सखी-युत वहाँ आई उसी काल में।
लज्जा-नम्रमुखी हुई पर वहाँ सो देख के भूप को,
मानी भूपति ने तथा सफलता आलोक तद्रूप को॥

(२०)

"हैं इन्दीवर नेत्र, चन्द्र मुख है, हैं कञ्ज दोनों कर,
हे रम्भोरु! मृणाल बाहु तव हैं, हैं दिव्य-द्राक्षाधर।
सो आलिङ्गन हर्ष-दायिनि मुझे निःशङ्क तू देकर,
अङ्गों को सुख दे अनङ्ग-कृत त्यों सन्ताप मेरा हर"॥

(२१)

राजा के सुन वैन यों वह हुई रोमाञ्चिता, स्तम्भिता,
लज्जा-सङ्कुचिता प्रकम्पित तथा स्वेदाम्बु-संशोभिता।
रानी मुख्य वहाँ उसी समय में भूपाल की आगई;
लीला अद्भुत देखते वह वहाँ सुक्रोध में छागई॥

(२२)

रानी को सहसा विलोक नृप को सङ्कोच भारी हुआ,
लज्जा-युक्त हुए यथा कमल को चन्द्र-प्रभा ने छुआ।
रानी ने अति रुष्ट होकर पुनः रत्नावली सत्वर
रक्खी यत्न-समेत गुप्त गृह में तत्काल वन्दी कर॥

(२३)

आया एक महेन्द्रजालिक पुनः उज्जैन-वासी वहाँ,
विद्या देख तदीय भूप-वर ने आश्चर्य्य माना महा।
नाना दृश्य दिखा विचित्र उसने की एक लीला यह,
मानों वह्नि समस्त राजगृह में हो छागई दुःसह॥

(२४)

ऐसा भीषण दृश्य देख महिषी अत्यन्त भीता हुई;
वन्दी सागरिका-हितार्थ नृप से प्रार्थी विनीता हुई।
राजा ने सुन के प्रिया वचन यों निःशङ्क हो तत्क्षण,
जा के शीघ्र किया स्वयं अनल से रत्नावली-रक्षण॥

(२५)

मन्त्री सिंहल का उसी समय में चिन्तार्त्त दुःखी महा,
आया दूत समेत नीरनिधि से उद्धार पाके वहाँ॥
भेदोद्घाटन हो गया तब सखे! रत्नावली का सभी,
क्या से क्या कब हो, चरित्र हरि के जाने न जाते कभी॥

१५—उत्तरा से अभिमन्यु की बिदा।

(१)

हे विज्ञ दर्शक! देखिए, है दृश्य क्या अद्भुत अहा!
यह वीर-करुणा-सम्मिलन कैसा विलक्षण हो रहा।
ये पार्थ-सुत अभिमन्यु हैं वे उत्तरा उनकी प्रिया,
ये माँगते हैं रण-बिदा, वे कर रहीं वर्जन-क्रिया।

(२)

यह देख कर इस चित्र में कैसा मनोहर भाव है,
किस चित्त पर पड़ता नहीं इसका विचित्र प्रभाव है?
फिर मित्रवर! संक्षेप में इसकी कथा सुन लीजिए,
निज शौर्य, साहस, धैर्य, दृढ़ता याद उससे कीजिए॥

(३)

रणधीर द्रोणाचार्य कृत दुर्भेद्य चक्रव्यूह को,
शस्त्रास्त्र-सज्जित ग्रथित विस्तृत शूर-वीर-समूह को।
जब कर सके भेदन न पाण्डव एक अर्जुन के बिना,
तब बहुत ही व्याकुल हुए कर कर अनेकों कल्पना॥

(४)

यों देख कर चिन्तित उन्हें धर ध्यान समरोत्कर्ष का,
अभिमन्यु प्रस्तुत हुआ रण को वीर षोडश वर्ष का !
वह चक्रव्यूह-विभेद विधि का सहज रखता ज्ञान था,
निज पिता अर्जुन-तुल्य ही बलवान था, गुणवान था॥

(५)

"हे तात! तजिए सोच को, है काम ही क्या क्लेश का?
प्रकटित करूँगा व्यूह में मैं द्वार शीघ्र प्रवेश का"।
यों पाण्डवों से कह समर को वीर वह सज्जित हुआ,
छवि देख उसकी उस समय सुरराज भी लज्जित हुआ।

(६)

नर देव-सम्भव वीर वह रण मध्य जाने के लिए,
बोला वचन निज सारथी से रथ सजाने के लिए।
यह विकट साहस देख उसका चकित सारथि हो गया,
कहने लगा इस भाँति फिर वह देख उसका वय नया॥

(७)

"हे शत्रुनाशन ! आपने यह भार गुरुतर है लिया,
"हैं द्रोण रण-पण्डित कठिन है व्यूह-भेदन की क्रिया।
"रण-विज्ञ यद्यपि आप हैं पर सहज ही सुकुमार हैं,
"सुखसहित नित पोषित हुए निजवंश-प्राणाधार हैं"॥

(८)

सुन सारथी की यह विनय बोला वचन वह वीर यों,
करता घनाघन गगन में निर्घोष अति गम्भीर ज्यों।
"हे सारथे ! हैं द्रोण क्या, आवें यदपि देवेन्द्र भी,
"वे भी न जीतेंगे समर में, आज क्या, मुझसे कभी॥

(९)

"श्रीराम के हयमेध से अपमान अपना मान के,
"मख अश्व जब लव और कुश ने जय किया रणठान के।
"अभिमन्यु षोडश वर्ष का फिर क्यों लड़े रिपु से नहीं,
"क्या आर्य्य-वीर विपक्ष-वैभव देखकर डरते कहीं?॥

(१०)

"सुनकर गजों का घोष उसको समझ निज-अपयश-कथा
"उन पर झपटता सिंह-शिशु भी कोप कर जब सर्वथा।
"फिर द्रोण-व्यूह-विनाश-हित अभिमन्यु उद्यत क्यों न हो।
"क्या वीर-बालक शत्रु का अभिमान सह सकते, कहो?

(११)

"मैं सत्य कहता हूँ सखे ! सुकुमार मत मानो मुझे,
"यमराज से भी युद्ध को प्रस्तुत सदा जानो मुझे।
"है और की तो बात ही क्या, गर्व मैं करता नहीं
"मामा'*तथा निज तात से भी समर में डरता नहीं"॥

(१२)

कह वचन यों निज सूत से वह वीर रण में मन दिये,
पहुँचा शिविर में उत्तरा से विदा होने के लिये।
सब हाल इसने निज प्रिया से जब कहा जाकर वहाँ,
तब क्या कहा उसने, उसे अब हम सुनाते हैं यहाँ॥

(१३)

"मैं यह नहीं कहती कि रिपु से आप युद्ध करें नहीं
"तेजस्वियों की आयु भी देखी भला जाती कहीं?
"मैं जानती हूँ नाथ ! यह मैं मानती भी हूँ तथा,
"उपकरण† में नहिं, शक्ति में ही सिद्धि रहती सर्वथा॥

(१४)

"अपशकुन आज परन्तु मुझको हो रहे, सच जानिए,
"मत जाइए इससे समर में प्रार्थना यह मानिए।
"जाने न दूँगी नाथ ! तुमको आज मैं संग्राम में,
"उठतीं बुरी हैं भावनाएँ हाय ! मम हृद्धाम में"॥

(१५)

कहती हुई यों उत्तरा के नेत्र जल से भर गये,
हिम के कणों से पूर्ण मानों हो गये पङ्कज नये।
निज प्राणपति के स्कन्ध पर रखकर वदन वह सुन्दरी
करने लगी फिर प्रार्थना नाना प्रकार व्यथा-भरी॥

(१६)

यों देख व्याकुल उत्तरा को सान्त्वना देता हुआ,
उसका मनोहर कर-कमल निज हाथ में लेता हुआ।
कहने लगा अभिमन्यु उससे जो यथोचित रीति से
सुन लीजिए अब हे रसिकजन! कथन वह भी प्रीति से॥

*श्रीकृष्ण। † सामग्री।

मनोरमा ।

अनुपम रमणी "मनोरमा", कर सकती समता नहीं रमा ।
सुरपुर इससे हुई मही, निज पति का कर है ध्यान रही ।।

(१७)

"जीवनमयी, सुखदायिनी, प्राणाधिके, प्राणप्रिये !
"होना तुम्हें क्या चाहिए इस भाँति कातर निज हिये ?
"हो शान्त, सोचो हृदय में है योग्य क्या तुमको यही
"हा ! हा ! तुम्हारी विकलता जाती नहीं मुझसे सही ॥

(१८)

"वीर-स्नुषा* तुम, वीर-रमणी, वीर-गर्भा हो तथा,
"आश्चर्य जो मम रण-गमन से हो तुम्हें फिर भी व्यथा।
"हो जानती बातें सभी, कहना हमारा व्यर्थ है,
"बदला न लेना शत्रु से कैसा अधर्म अनर्थ है ?

(१९)

"निज शत्रु का साहस कभी बढ़ने न देना चाहिए,
"बदला समर में वैरियों से शीघ्र लेना चाहिए।
"पापी जनों को दण्ड देना चाहिए समुचित सदा,
"वर-वीर-क्षत्रिय-वंश का कर्तव्य है यह सर्वदा ॥

(२०)

"इन कौरवों ने हा ! हमें सन्ताप कैसे हैं दिये,
"हैं याद क्या न तुम्हें इन्होंने पाप जैसे हैं किये ?
"फिर भी इन्हें मारे बिना हम लोग यदि जीते रहें,
"तो सोच लो संसार भर के वीर हमसे क्या कहें ?

(२१)

"जिस पर हृदय का प्रेम होता सत्य और समग्र है,
"उसके लिए चिन्तित, अतः रहता सदा वह व्यग्र है।
"होना इसी से है तुम्हारा चित्त व्याकुल हे प्रिये !
"यह सोचकर सो अब तुम्हें शङ्कित न होना चाहिए ॥

(२२)

"रण में विजय पाकर प्रिये ! मैं शीघ्र लौटूँगा यहाँ,
"चिन्ता करो मन में न तुम होती मुझे पीड़ा महा।
"सोचो भला भगवान ही जब हैं हमारे पक्ष में,
"है ठहर सकता कहो फिर भी शत्रु कौन समक्ष में" ?

(२३)

इस समय का ही चित्र है यह, ध्यान इस पर दीजिए,
इसका प्रकाशन सफल कर आत्मस्मरण कर लीजिए।
अभिमन्यु का यह चरित अनुकरणीय प्रायः है सभी,
जो हो सका तो युद्ध भी इसका सुनाऊँगा कभी ॥

*स्नुषा = बहू।

१९—मनोरमा।

(१)

रसिकवृन्द ! विलोकन कीजिए ;
सरस रूप-सुधा-रस पीजिए।
यह छवि-प्रतिमा अति उत्तमा ;
विदित नाम यथार्थ "मनोरमा" ॥

(२)

गुणवती सब भाँति सुलक्षिणी ,
सुवदनी, रमणी यह दक्षिणी।
यह नितम्बिनि यद्यपि है नरी ;
सरस भाषण में पर किन्नरी ॥

(३)

यदपि है पहने गहने नहीं ,
छवि परन्तु नहीं इस सी कहीं।
हम इसे इस भाँति सराहते—
"न रमणीय विभूषण चाहते" ॥

(४)

"प्रिय लगे यदि मण्डन-मण्डिता ;
छवि अखण्ड नहीं, वह खण्डिता"।
समझ क्या मन में इस बात को ,
यह किये अनलङ्कृत गात को ॥

(५)

रुचिर कञ्ज स्वयं रहता यथा ;
न विधु भूषण है चहता यथा।
विधुमुखी, कमलाक्षि, कृशोदरी ,
यह तथैव स्वयं अति सुन्दरी ॥

(६)

हृदय को हरते निज वेश से ,
छहरते कच पृष्ठ-प्रदेश से।

भुजग जो कदली दल पै बसें,
कुछ वही इनके सम तो लसें॥

(७)

कर रही पति का शुभ ध्यान है ;
रह गया कुछ बाह्य न ज्ञान है।
अचल मञ्जुल मूर्त्ति समान है ,
अति अलौकिक रूप-निधान है॥

(८)

खुल रहे युग नेत्र विशाल ये,
तज विलास चुके इस काल ये।
प्रिय मुखाब्ज-छटा-रस-पान ये ,
कर रहे वर-भृङ्ग समान ये॥

(९)

पलक निश्चल हैं, स्थिर दृष्टि है,
भर रही उसमें रस वृष्टि है।
झष कहीं कमलों पर सो रहें ,
सुकवि तो उनकी उपमा कहें॥

(१०)

कुल-वधू-जन को पति ही सदा
अति प्रदर्शित उत्तम सम्पदा।
स्वपति का कर चिन्तन यों, कहो ,
फिर सखे! यह तन्मय क्यों न हो?

१७–द्रौपदी-दुकूल।

(१)

राजसूय के समय देखकर
विभव पाण्डवों का भारी ,
ईर्ष्या-वश मन में दुर्योधन
जलने लगा दुराचारी।
तिस पर मय-कृत सभा-भवन में
जो उसका अपमान न हुआ ,
कुरुक्षेत्र के भीषण रण का
मानों वही विधान हुआ॥

(२)

धर्म्मराज का सभा-भवन वह
हृदय सभी का हरता था ;
उन्नत नभस्थली का विधु-मुख
मानों चुम्बन करता था।
चित्र विचित्र रुचिर रत्नों से
मण्डित यों छवि पाता था—
इन्द्र-धनुष-भूषित मेघों को
नीचा सा दिखलाता था॥

(३)

वह अद्भुत छवि से "अवनी का
इन्द्र-भवन" कहलाता था ;
अपने कर्त्ता के कौशल को
भली भाँति दरसाता था।
जल में थल थल में जल का वह
भ्रम मन में उपजाता था ;
इस कारण भ्रमिष्ठ लोगों की
बहुधा हँसी कराता था॥

(४)

इसी भ्रान्ति से जल विचार कर
वहाँ सुयोधन ने थल को ,
ऊँचा किया वसन वर अपना
करके चपल दृगञ्चल को।
तथा अचल निर्मल नीलम सम
था ललाम जल भरा जहाँ
गमनशील हो थल के भ्रम से
वह उसमें गिर पड़ा वहाँ॥

(५)

उसकी ऐसी दशा देखकर
हँस कर बोले भीम वहीं—
"अन्धे के अन्धा होता है
इसमें कुछ सन्देह नहीं"।
इस घटना से ऐसा दुस्सह
मर्म्मान्तिक दुख हुआ उसे,
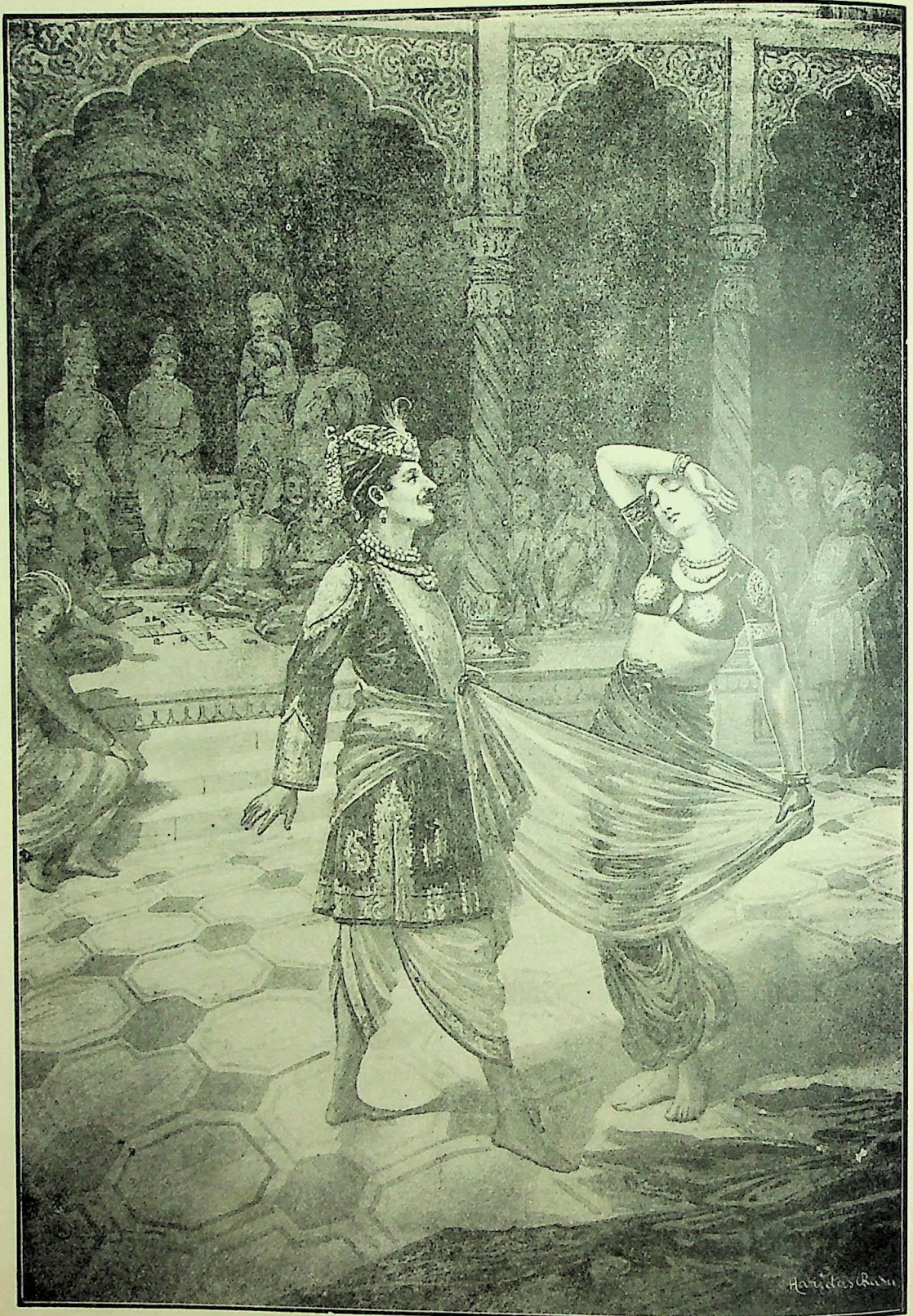
द्रौपदी-दुकूल।

यह दुःशासन-विवश द्रौपदी दुख पाती है ; सिंह-जाल में पड़ी मृगी-सम अकुलाती है।
वस्त्र खींचते देख उसे प्रभु को ध्याती है ; "हे हरि रक्षा करो लाज मेरी जाती है" ॥

किन्तु पाण्डवों ने इस दुख से
पाई प्राणान्तक पीड़ा।
तो भी वचन बद्ध होने से
ये सब पापाचार सहे;
मन्त्रों से कीलित भुजङ्ग सम
जलते ही वे वीर रहे॥

(१४)

"मुझे एक वस्त्रावस्था में
केश खींच लाया जो हाय!
दुष्ट-बुद्धि दुःशासन का यह
प्रकट देख कर भी अन्याय।
सभ्य, ख्यात-नामा ये सारे
सभा-मध्य बैठे चुपचाप!
तो क्या धर्म्म-हीन धरणी में
शेष रह गया केवल पाप"?

(१५)

सुन कर रुदन द्रौपदी का यों
कहा कर्ण ने तब तत्काल—
"निश्चय सभी स्वल्प है जो कुछ
हो ऐसी असती का हाल।
अच्छा, दुःशासन! यह जिसका
बार बार लेती है नाम
लो उतार इसके शरीर से
वह भी एक वस्त्र बेकाम"॥

(१६)

कर्ण-कथन सुन दुःशासन ने
पकड़ लिया द्रौपदी-दुकूल
किया क्रोध से भीमसेन ने
प्रण तब यों अपने को भूल—
"दुःशासन का उर विदीर्ण कर
शोणित जो मैं करूँ न पान,
तो अपने पूर्वज लोगों की
पा न सकूँ मैं गति-प्रधान"॥

(१७)

ग्रसी राहु से चन्द्रकला सम
कृष्णा तब अति अकुलानी;
एक निमेष-मात्र ही में सब
निज लज्जा जाती जानी।
ऐसे समय एक हरि को ही
अपना रक्षक जान वहाँ;
लगी उन्हीं को वह पुकारने
धर कर उनका ध्यान वहाँ॥

(१८)

"हे अन्तर्यामी मधुसूदन!
कृष्णचन्द्र! करुणासिन्धो!
रमा-रमण, दुख-हरण, दयामय,
अशरणशरण, दीन-बन्धो!
मुझ अभागिनी की अब तक तुम
भूल रहे हो सुधि कैसे?
नहीं जानते हो क्या केशव!
कष्ट पा रही हूँ जैसे॥

(१९)

'ज़रा देर में ही अब मेरी
लुटी लाज सब जाती है;
क्षण क्षण में आपत्ति भयङ्कर
अधिक अधिक अधिकाती है।
करती हुई विकट ताण्डव सी
निकट मृत्यु दिखलाती है;
केवल एक तुम्हारी आशा
प्राणों को अटकाती है॥

(२०)

"दुःशासन-दावानल-द्वारा
मेरा हृदय जला जाता;
बिना तुम्हारे यहाँ न कोई
रक्षक अपना दिखलाता।
ऐसे समय तुम्हें भी मेरा
ध्यान नहीं जो आवेगा,

जब तक जीवित रहा जगत में
फिर न कभी सुख हुआ उसे ॥

(६)

वीर पाण्डवों से तब उसने
बदला लेने की ठानी ;
किन्तु प्रकट विग्रह करने में
कुशल नहीं अपनी जानी ।
तब उनका सर्वस्व जुए में
हरना उसने ठीक किया—
कार्य्याकार्य्य विचार न करता
स्वार्थी जन का मलिन हिया ॥

(७)

भीष्मपितामह और विदुर ने
उसको सब विध समझाया ;
किन्तु एक उपदेश न उनका
उस दुर्मति के मन भाया ।
उनका कहना वन-रोदन सा
उसके आगे हुआ सभी—
मन के दृढ़ निश्चय को विधि भी
पलटा सकता नहीं कभी ॥

(८)

"जुआ खेलना महा पाप है"—
करके भी यह बात विचार,
दुर्योधन के आमन्त्रण को
किया युधिष्ठिर ने स्वीकार ।
हो कुछ भी परिणाम अन्त में,
धर्म्मशील वर-वीर तथापि
निज प्रतिपक्षी की प्रचारणा
सह सकते हैं नहीं कदापि ॥

(९)

छल से तब शकुनी ने उनका
राजपाट सब जीत लिया;
भ्राताओं के सहित स्व-वश कर
सब विध विधि-विपरीत किया ।
फिर कृष्णा का पण करने को
प्रेरित किये गये वे जब
हार पूर्ववत् गये उसे भी
रख कर द्यूत-दाँव पर तब ॥

(१०)

इस घटना से दुर्योधन ने
मानों इन्द्रासन पाया;
भरी सभा में उस पापी ने
पाञ्चाली को बुलवाया ।
होने से ऋतुमती किन्तु वह
आ न सकी उस समय वहाँ;
भेजा इस पर दुःशासन को
होकर उसने कुपित महा ॥

(११)

राजसूय के समय गये थे
जो मन्त्रित जल से सींचे
जाकर वही याज्ञसेनी के
कच दुःशासन ने खींचे !
बलपूर्वक वह उस अबला को
वहाँ पकड़ कर ले आया;
करने में अन्याय हाय ! यों
नहीं ज़रा भी शरमाया ॥

(१२)

प्रबल जाल में फँसी हुई ज्यों
दीन मीन व्याकुल होती,
विवश विकल द्रौपदी सभा में
आई त्यों रोती रोती ।
अपनी यह दुर्दशा देख कर
उसको ऐसा कष्ट हुआ,
जिसके कारण ही पीछे से
सारा कुरुकुल नष्ट हुआ ॥

(१३)

दुर्योधन-दुःशासन ने यह
समझी निज सुख की क्रीड़ा;

तो हा! हा! फिर अहो दयामय!
मुझको कौन बचावेगा?

(२१)

"क्रिया-हीन ये चित्र लिखे से
बैठे यहाँ मौन धारे;
मेरी यह दुर्दशा सभा में
देख रहे गुरुजन सारे!
तुम भी इसी भाँति सह लोगे
जो ये अत्याचार हरे!
निस्संशय तो हम अनाथ जन
बिना दोष ही हाय! मरे॥

(२२)

"किसी समय भ्रम-वश जो कोई
मुझसे गुरुतर दोष हुआ,
हो जिससे मेरे ऊपर यह
ऐसा भारी रोष हुआ।
तो सदैव के लिए भले ही
मुझको न·क-दण्ड दीजे;
किन्तु आज इस पाप-सभा में
लज्ज· मेरी रख लीजे॥

(२३)

"सदा धर्म्म-संरक्षण करने,
हरने को सब पापाचार,
हे जगदीश्वर! तुम धरणी पर
धारण करते हो अवतार।
फिर अधर्म्म-मय अनाचार यह
किस प्रकार तुम रहे निहार;
क्या वह कोमल हृदय तुम्हारा
हुआ वज्र मेरी ही वार?

(२४)

'शरणागत की रक्षा करना
सहज स्वभाव तुम्हारा है;
वेद-पुराणों में अति अद्भुत
विदित प्रभाव तुम्हारा है।
सो यदि ऐसे समय न मुझ पर
दया-दृष्टि दिखलाओगे,
विरुद-भ्रष्ट होने से निश्चय
प्रभु पीछे पछताओगे॥

(२५)

"जब जिस पर जो पड़ी आपदा
तुमने उसे बचाया है;
तो फि· क्यों इस भाँति दयामय!
तुमने मुझे बुलाया है।
इस मरणाधिक दुख से जो मैं
मुक्ति आज पा जाऊँगी,
गणिका, गज, गृद्धादिक से मैं
कम न कीर्त्ति फैलाऊँगी॥

(२६)

"जो अनिष्ट मन से भी मैंने
नहीं किसी का चाहा है;
जो कर्त्तव्य धर्म्मयुत अपना
मैंने सदा निबाहा है।
तो अवश्य इस विपत्-सिन्धु से
तुम मुझको उद्धारोगे:
निश्चय दया-दृष्टि से माधव!
मेरी ओर निहारोगे"॥

(२७)

करती हुई विनय यों प्रभु से
कृष्णा ने दृग मूँद लिये:
क्षण भर देह-दशा को भूले
खड़ी रही वह ध्यान किये।
तब करुणामय कृष्णचन्द्र ने
दूर किया उसका दुख घोर;
खींच खींच पट हार गया पर
पा न सका दुःशासन छोर!!!

१८-केशों की कथा।

(१)

घन और भस्म विमुक्त भानु-कृशानु सम शोभित नये
अज्ञात-वास समाप्त कर जब प्रकट पाण्डव हो गये।
तब कौरवों से शान्ति-पूर्वक और समुचित रीति से
माँगा उन्होंने राज्य अपना प्राप्य था जो नीति से।

(२)

हो किन्तु वश में कुमति के निज प्रबलता की भ्रान्ति से
देना न चाहा रण-बिना उसको उन्होंने शान्ति से।
तब क्षमाभूषण, नित्यनिर्भय, धर्मराज महाबली
कहने लगे श्रीकृष्ण से इस भाँति वर-वचनावली—

(३)

दुर्योधनादिक कौरवों ने जो किये व्यवहार हैं
सो विदित उनके आपको सम्पूर्ण पापाचार हैं।
अब सन्धि के सम्बन्ध में उत्तर उन्होंने जो दिया
हे कमल-लोचन! आपने वह भी प्रकट सब सुन लिया॥

(४)

कर्तव्य अब जो हो हमारा दीजिए सम्मति हमें
रण के बिना अब नहीं कोई दीखती है गति हमें।
जब शान्ति करना चाहते वे राज्य मुक्त बिना किये
कैसे कहें फिर हैं न वे तैयार विग्रह के लिए?

(५)

जिनके सहायक आप हैं हम युद्ध से डरते नहीं
क्षत्रिय समर में काल से भी भय कभी करते नहीं।
पर भरत-वंश-विनाश की चिन्ता हमें दुख दे रही
बस बात बारम्बार मन में एक आती है यही॥

(६)

हैं दुष्ट, पर कौरव हमारे बन्धु ही हैं सर्वदा
अतएव दोषी भी क्षमा के पात्र वे सब हैं सदा।
यह सोच कर ही हम न उनका चाहते संहार थे
पर देखते हैं दैव को स्वीकार ये न विचार थे॥

(७)

जो ग्राम केवल पाँच ही देते हमें वे प्रेम से
सन्तुष्ट थे हम राज्य सारा भोगते वे क्षेम से।
निज हाथ उनके रक्त से रँगना न हमको इष्ट था
सम्बन्ध हमसे और उनसे सब प्रकार घनिष्ठ था॥

(८)

सुनकर युधिष्ठिर के वचन भगवान यों कहने लगे—
मानों गरजते हुए नीरद भूमि में रहने लगे।
"है कौरवों के विषय में जो आपने निज मत कहा
स्वाभाविकी वह आपकी है सरलता दिखला रहा॥

(९)

औदार्य्य-पूर्वक आप उनको चाहते करना क्षमा
आसन्न-मृत्यु परन्तु उनमें वैर-भाव रहा समा।
अतएव उनसे सन्धि की आशा समझनी व्यर्थ है
दुर्बुद्धियों को बोध देने में न दैव समर्थ है॥

(१०)

उपदेश कोई यदपि उनके चित्त में न समायँगे
तो भी उन्हें हम सन्धि करने के लिए समझायँगे।
होगा न उससे और कुछ तो बात क्या कम है यही
निर्दोषता जो जान लेगी आपकी सारी मही"॥

(११)

यों कह युधिष्ठिर से वचन इच्छा समझ उनकी हिये
प्रस्तुत हुए हरि हस्तिनापुर-गमन करने के लिये
इस सन्धि के प्रस्ताव से भीमादि व्यग्र हुए महा
पर धर्मराज-विरुद्ध धार्मिक वे न कुछ बोले वहाँ॥

(१२)

तब सहन करने से सदा मन की तथा तन की व्यथा
जो क्षीणदीन निदाघ-निशि सम हो रही थी सर्वथा।
सो याज्ञसेनी द्रौपदी अवलोक दृष्टि सतृष्ण से
हिम-मलिन-विधु-सम वदन से बोली वचन श्रीकृष्ण से॥

(१३)

"हैं तत्त्वदर्शी जन जिन्हें सर्वज्ञ नित्य बखानते
हे तात! यद्यपि तुम सभी के चित्त की हो जानते।

श्रीकृष्ण और द्रौपदी ।

तो भी प्रकट कुछ कथन की जो धृष्टता मैं कर रही
मुझ पर विशेष कृपा तुम्हारी हेतु है इसका यही ॥

(१४)

जिस हृदय की दुःखाग्नि से जलती हुई भी निज हिये
जीवित किसी विधि मैं रही शुभ समय की आशा किये ।
हा ! हन्त !! आज अजातरिपु ने दया रिपुओं पर दिखा
करदी ज्वलित घृत डाल के ज्यों और भी उसकी शिखा ॥

(१५)

सुन कर न सुनने योग्य हा ! इस सन्धि के प्रस्ताव को
है हो रहा यह चित्त मेरा प्राप्त जैसे भाव को ।
वर्णन न कर सकती उसे मैं वज्रहृदया परवशा
हरि तुम्हीं एक हताश जन की जान सकते हो दशा ॥

(१६)

केवल दया ही शत्रुओं पर है न दिखलाई गई
हा ! आज भावी सृष्टि को दुर्नीति सिखलाई गई ।
चलते बड़े जन आप हैं संसार में जिस रीति से
करते उन्हीं का अनुकरण दृष्टान्तयुत सब प्रीति से ॥

(१७)

जो शत्रु से भी अधिक बहुविधि दुख हमें देते रहे
वे क्रूर कौरव हा ! हमीं से आज बन्धु गये कहे ।
नीतिज्ञ गुरुओं ने भुला दी नीति यह कैसे सभी—
"अपना अहित जो चाहता हो वह नहीं अपना कभी ॥"

(१८)

जो ग्राम लेकर पाँच ही तुम सन्धि करने हो चले
औदार्य्य और दयालुता ही हेतु हों इसके भले ।
पर "डर गये पाण्डव" सदाही यह कहेंगे जो अहो !
निज हाथ लोगों के मुखों पर कौन रक्खेगा कहो ?

(१९)

क्या कर सकेंगे सहन पाण्डव हाय ! इस अपमान को ?
क्या सुन सकेंगे प्रकट वे निज घोर अपयश-गान को ?
होता सदा है सज्जनों को मान प्यारा प्राण से
है यशोधनियों को अयश लगता कठोर कृपाण से ॥

(२०)

देवेन्द्र के भी विभव को सन्तत लजाते जो रहे
हा पाँच ग्रामों के वही हम आज भिक्षुक हो रहे !
अब भी हमें जीवित कहे जो सो अवश्य अजान है
हैं जानते यह तो सभी "दारिद्र्य मरण समान है" ॥

(२१)

अथवा कथन कुछ व्यर्थ अब जब क्षमा उनको दी गई
केवल क्षमा ही नहीं उनसे बन्धुता भी की गई !
सो अब भले ही सन्धि अपने बन्धुओं से कीजिये
पर एक बार विचार फिर भी कृत्य उनके लीजिये ॥

(२२)

क्या क्या न जानें नीच निर्दय कौरवों ने है किया
था भोजनों में पाण्डवों को विष इन्होंने ही दिया ।
सो सन्धि करने के समय इस विषम विष की बात को
मुझ पर कृपा करके उचित है सोच लेना तात को ॥

(२३)

है विदित जिसकी लपट से सुरलोक सन्तापित हुआ
होकर ज्वलित सहसा गगन का छोर था जिसने छुआ ।
उस प्रबल जतुगृह के अनल की बात भी मन से कहीं
हे तात ! सन्धि विचार करते तुम भुला देना नहीं ।

(२४)

मृग-चर्म धारे पाण्डवों को देख वन में डोलते
तुमने कहे थे जो वचन पीयूष मानों घोलते ।
जो क्रोध उस वेला तुम्हें था कौरवों के प्रति हुआ
रखना स्मरण वह भी, तथा जो जल दृगों से था चुआ ॥

(२५)

था सब जिन्होंने हर लिया छल से जुवे के खेल में
प्रस्तुत हुए किस भाँति पाण्डव कौरवों से मेल में ?
उस दिवस जो घटना घटी थी भूल क्या वे हैं गये
अथवा विचार विभिन्न उनके हो गये अब हैं नये" ?

(२६)

फिर दुष्ट दुःशासन हुआ था तुष्ट जिनको खींच के
ले दाहिने कर में वही निज केश लोचन सींच के ।

रख कर हृदय पर वाम कर शर-विद्ध-हरिणी सम हुई
बोली विकलतर द्रौपदी वाणी महा करुणामयी ॥

(२७)

"करुणा-सदन! तुम कौरवों से सन्धि जब करने लगो
चिन्ता व्यथा सब पाण्डवों की शान्ति कर हरने लगो।
हे तात! तब इन मलिन मेरे मुक्त केशों की कथा
है प्रार्थना मत भूल जाना, याद रखना सर्वथा॥"

(२८)

कहकर वचन यह दुःख से तब द्रौपदी रोने लगी
नेत्राम्बुधारा-पात से कृश अङ्ग निज धोने लगी।
हो द्रवित करके श्रवन उसकी प्रार्थना करुणा-भरी
देने लगे निज कर उठाकर सान्त्वना उसको हरी॥

(२९)

"भद्रे! रुदन कर बन्द हा! हा! शोक को मन से हटा
यह देख तेरी दुख-घटा जाता हृदय मेरा फटा।
विश्वास मेरे कथन का जो हो तुझे मन में कभी
सच जान तो दुख दूर होंगे शीघ्रही तेरे सभी॥

(३०)

जिस भाँति गद्गद कण्ठ से तू रो रही है हाल में
रोती फिरेंगी कौरवों की नारियाँ कुछ काल में।
लक्ष्मी-सहित रिपु-रहित पाण्डव शीघ्रही हो जायँगे
निज नीच कर्मों का उचित फल कुटिल कौरव पायँगे॥"

(३१)

इस समय के ही दृश्य का यह चित्र करुणामय बड़ा
सहृदय रसिक जन देखिए इसको हृदय करके कड़ा।
पर देखना दृग-नीर से देना इसे न बहा कहीं
काञ्चन-रहित मणि सम निरी यह रह कथा जावे नहीं॥

१६—अर्जुन और उर्वशी।

(१)

निज विपक्ष-समूह समाप्ति को
जब अलौकिक आयुध-प्राप्ति को।
प्रबल पार्थ गये अमरावती
मुदित इन्द्र हुए उनसे अती॥

(२)

प्रिय करूँ तब क्या मुझसे कहो?
न वह दुर्लभ है तुम जो चहो।
त्रिदिव*, मोक्ष तथा अमरत्व भी,
सुलभ हैं तुमको सुख ये सभी॥

(३)

वचन यों उनसे सुखदायक
कह चुके जब निर्जर-नायक†।
विनय-पूर्वक वे उनसे तब
निज अभीष्ट लगे कहने सब॥

(४)

सुरपते! भवदीय कृपा जब
सुलभ क्यों सुख हो न मुझे तब?
जब कृपा करते गुरु लोग हैं
तब अलभ्य कहाँ सुख-भोग हैं?

(५)

न चहता पर सम्प्रति स्वर्ग मैं
न अमरत्व तथा अपवर्ग‡ मैं।
बस विभो! रिपु-नाशन के लिए
निज अलौकिक आयुध दीजिए॥

(६)

विविध कष्ट दिये जिसने हमें
स्वपद भ्रष्ट किये जिसने हमें।
वह विपक्ष विनष्ट बिना किये,
न कुछ इष्ट मुझे सच जानिये॥

(७)

हृदय-शान्ति तथा सुख-कारण,
प्रथम योग्य मुझे रिपु-मारण।
अधिक और विभो! अब क्या कहूँ?
सब प्रकार अबोध अजान हूँ॥

---

* स्वर्ग। † इन्द्र। ‡ मोक्ष।

उर्वशी और अर्जुन।

(८)

कथन यों करते निज लालसा
मुख हुआ उनका कुछ लाल सा ।
अति विचित्र मनों जलजात का
बन गया वर भानु प्रभात का ॥

(९)

कर विपत्त कृति-स्मृति, काल ज्यों
कुपित देख उन्हें उस काल यों ।
सुरप ने अति धैर्य्य दिया उन्हें,
प्रणयपूर्वक शान्त किया उन्हें ॥

(१०)

फिर प्रहार-प्रयोग-क्रिया-युत
अति अलौकिक आयुध अद्भुत ।
मुदित होकर शक्र-समाहृत
ग्रहण पार्थ लगे करने नित ॥

(११)

समय यों कुछ बीत गया यदा
रजनि में उनके तब एकदा ।
निकट प्राप्त हुई यह उर्वशी,
स्वकृति से उनको करने वशी ॥

(१२)

यदपि वे इसकी महिमा महा
प्रथम थे अवलोक चुके वहाँ ।
पर छटा यह आज निहार के
न सहसा पहचान इसे सके ॥

(१३)

न इसकी छवि सी छवि है कहीं,
फिर रहें चुपही हम क्यों नहीं ।
बस यही कहना जचता सही,
भुवन में इसकी उपमा यही ॥

(१४)

अति अलौकिक सुन्दरतामयी
निकट पाण्डव के जब आगई ।
फिर ज़रा हँसते हँसते अहा !
निज मनोरथ यों उसने कहा ॥

(१५)

"भुवन-मोहन ! शक्र निदेश से
निखिल-भूषण-भूषित-वेश से ।
सुखित मैं तुमको करने महा,
अनुचरी सम प्राप्त हुई यहाँ ॥

(१६)

निखिल-नाट्य-विलास अभिज्ञ मैं,
अभिनयादिक में अति विज्ञ मैं ।
तव अशेष गुणों पर लुब्ध हूँ,
रमन-योग्य ! मनोभव-मुग्ध हूँ" ॥

(१७)

कथन यों उस कामिनि का सुन,
सुन सके फिर और न अर्जुन ।
इसलिए वह धर्म्म-सुधा पगे,
वचन यों उससे कहने लगे ॥

(१८)

"बस करो बस देवि ! न यों कहो,
वचन ये अघ-पूरित हैं अहो !
सुन नहीं सकते इनको हम,
तुम सदा मम पूज्य शची सम ॥

(१९)

सब प्रकार मनोहरता-भरी,
तुम अवश्य अलौकिक सुन्दरी ।
गुणवती, वर-बुद्धि, वदान्य हो,
पर मुझे जननी सम मान्य हो ॥

(२०)

व्यथित बान्धव हैं सब हा ! मम,
स्वपद-वञ्चित दीन दुखी सम ।
अहह ! जो सुख भोग करें हम,
धिक हमें, हम हैं अधमाधम ॥

(२१)

स्वजन भोग रहे बहु कष्ट हैं,
रिपु हुए अबलों नहिँ नष्ट हैं।
जगत में हम जीवित हैं तथा,
अधिक क्या इससे अब है व्यथा"॥

(२२)

सुन धनञ्जय का कहना यह,
अति हताश हुई मन में वह।
रह गई अति विस्मित सी तथा,
चकित चञ्चल चारु मृगी यथा॥

(२३)

रुचिर भाव यही इस चित्र में,
गुण भरे बहु पार्थ-चरित्र में।
फिर भला इसको, कहिए कृती!
प्रकट क्यों करती न सरस्वती॥

२०—मोहिनी।

(१)

सुख-सागर-मध्य निमग्न हुई
निज देह-दशा तक भूल रही।
उपमा इसके अनुकूल कहाँ
नव कल्पलता सम फूल रही॥
पहने अति दिव्य दुकूल हरा
दिखला न किसे छवि-मूल रही।
सज दोल प्रफुल्ल कदम्ब तले
मनमोहिनी मोहिनी भूल रही॥

(२)

रुचिपूर्वक दोल बढ़ाय रही
अनुराग अपार जगाय रही।
रस को बरसाय बहाय रही,
मन के नद को उमगाय रही॥
रति-रूप लजाय सुहाय रही,
अपने पर आप ठगाय रही।
मुसकाय रही, छविछाय रही,
सुख पाय रही मृदु गाय रही॥

(३)

सुख-दायक सावन के दिन हैं,
सब दृश्य महा मनभावन हैं।
जल से परि-पूरित भूमि हरी,
सब ओर घिरे नभ में घन हैं॥
पिक, चातक, मोर सु-बोल रहे,
गिरि, कानन मोह रहे मन हैं।
इस दोल-विहारिणी कामिनी के,
अनुकूल सभी सुख-साधन हैं॥

(४)

उड़ता वर वस्त्र समीरण से,
कचमुक्त हुए मन को हरते।
कुच तुङ्ग उमङ्ग भरे उर पै,
गिरि-शृङ्ग-छटा-गुरुता धरते॥
लचती कटि दोल-चलाचल से,
कल-कूजन नूपुर हैं करते।
इस चन्द्रमुखी-युवती-छवि की
तुलना करते कवि भी डरते॥

(५)

अति सुन्दर श्याम घटा घन की
अवनी पर क्या थहराय रही?
अथवा मधु-पान-प्रमत्त हुई
अलि-पंक्ति-छटा छहराय रही?
अथवा यह अञ्जन-वर्णमयी
उरगावली है लहराय रही?
अथवा मृदु मारुत से इसकी
यह केश-लता फहराय रही?

(६)

इस पावस में नभ में रहते
मन में डर के घनमण्डल से।
कर वास रहा विधु क्या क्षिति पै
सुख से इसके मुख के छल से?

मोहिनी ।

आनन्द से पैग बढ़ा रही है ; आकाश को दोल चढ़ा रही है ।
गाती हुई गीत नई नवेली ; है मोहिनी झूल रही अकेली ।।
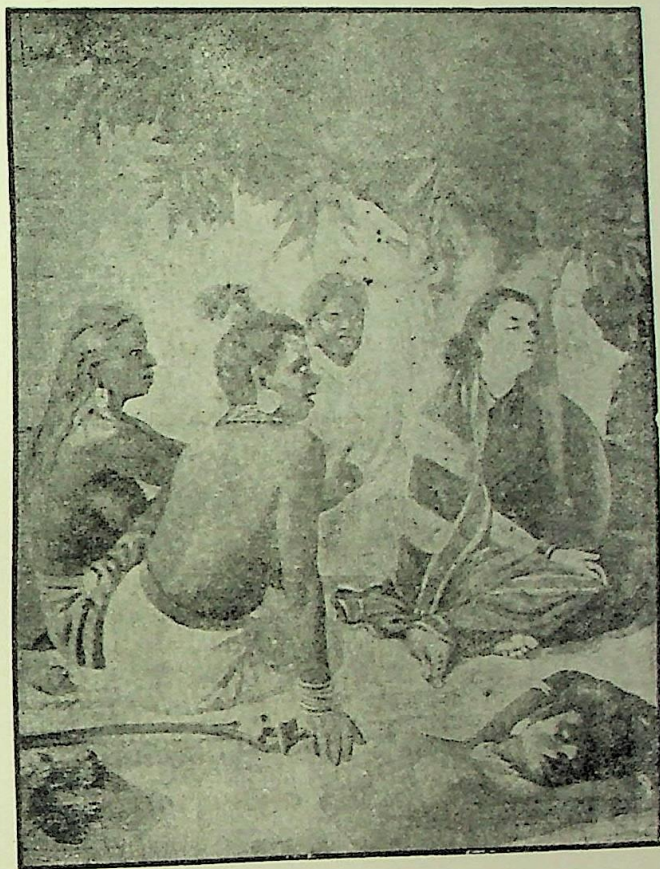
अशोकवासिनी सीता।

ये अशोक-वन बीच, पति-चिन्ता-रत मैथिली।
दशमुख रावण नीच, हर लाया इनको यहाँ॥

अनुमान अवश्य सही यह है
समझो इसको प्रतिभा-बल से ।
फिर पान करो यह गान-सुधा
इसके इस कण्ठ-कलाकल से ॥
(७)
विटपाग्र-प्रकम्पक मारुत से
उड़ता इसका जब अञ्चल है ।
उठती तब एक विचित्र छटा
करती मन जो अति चञ्चल है ॥
लजती करि-कुम्भ-मनोहरता
छिपता जल में चकवा-दल है ।
पड़ती क्षिति पै चपला-द्युति सी,
मिलता युग लोचन का फल है ॥
(८)
चपला-सम देह-लता छवि है,
घन के सम केश मनोहर हैं ।
सुरराज-शरासन सी भृकुटी,
झष-तुल्य सुखी दृग सुन्दर हैं ॥
पिक-कूजन गान समान तथा,
हरिताङ्कुर चीर बराबर हैं ।
सब लक्षण पावस के इसमें
इस भाँति अतीव उजागर हैं ।

२१--अशोक-वासिनी सीता ।

(१)
जिनके माया-सूत्र में ग्रथित सकल संसार ।
बन्दी सो ये जनक-जा दशमुख कारागार ॥
(२)
जिनके चिन्तन-मात्र से होते भव-भय भग्न ।
सो अशोक-तरु के तले बैठीं शोक-निमग्न ॥
(३)
जिनके भृकुटि-विलास से जगदुत्पत्ति-विनाश ।
निशाचरी उनको अहो ! देतीं बहुविध त्रास ॥
(४)
घन से चपला सदृश जो नहीं राम से भिन्न ।
जगदम्बा सो आज ये विरह-विह्वला खिन्न ॥
(५)
भूषण-हीन शरीर में पहने वस्त्र मलीन ।
प्रिय-विहीन ये हो रहीं क्षीण और अति दीन ॥
(६)
जैसे तप में तरु बिना पाकर अति सन्ताप ।
मुरझाती जाती सदा लता आप ही आप ॥
(७)
निश्चरियों के मध्य भी शोभित ये इस भाँति ।
चन्द्रकला मानों घिरी सघन घटा की पाँति ॥
(८)
कर सकता है विकलता इनकी कौन बखान ।
बीत रहा है आज कल पल पल कल्प-समान ॥
(९)
दृग युग पलकों से ढके चिन्ता-विवश विशाल ।
ज्यों मलिन्द अरविन्द में बन्दी सायंकाल ॥
(१०)
नन्दनवन से भी रुचिर यह अशोक-वन आज ।
है इनको रौरव-सदृश बिना राम रघुराज ॥
(११)
कह कर गद्गद कण्ठ से हा ! रघुनन्दन राम !
पति-चिन्ता ही काम है इनका आठौ याम ॥
(१२)
"हा ! नव-जलधर-देह-वर रघुकुल-कमल-दिनेश ।
क्या इस दासी का कभी दूर न होगा क्लेश ?
(१३)
रखते थे जिस पर सदा करुणा अपरम्पार ।
प्राणनाथ ! उसको अहो क्यों यों रहे बिसार ?
(१४)
'छाया सम मम मन सदा रहता है तव साथ' ।
क्या मुझसे निज-कथन यह भूल गये हो नाथ ?

(१५)

व्याध-दशानन-जाल में व्याकुल मृगी-समान।
नहीं जानते क्या मुझे हे प्रिय, जीवन-प्राण॥

(१६)

हा! मेरे दुर्भाग्य से करुणामय भी आप।
आज निठुर हो दे रहे अधिक अधिक सन्ताप॥

(१७)

अहो! ऊर्मिला-प्राण-धन देवर रघुकुल-रत्न।
करते हो क्या कुछ तुम्हीं मेरे लिये प्रयत्न?

(१८)

किया तुम्हारा वत्स! था जो मैंने अपमान।
क्या उसका यह दे रहे फल मुझको भगवान?

(१९)

हा! हा! ऐसा है किया मैंने क्या अपराध।
जिस कारण यह सह रही दुःसह दुःख अगाध?

(२०)

मुझ अबला को कष्ट यों देते हुए सदैव।
क्या न दया आती तुझे अहो! दुष्ट दुर्दैव!

(२१)

प्राणाधार-वियोग के सह कर भी विष-बाण।
क्यों प्रयाण करते नहीं ए हो, पापी प्राण!

(२२)

जला न प्रिय-विरहाग्नि में पाकर भी दुख घोर।
बता बना किस वस्तु से तू हे हृदय कठोर!

(२३)

हे दृग-जल! बहते रहो चाहे अगणित कल्प।
किन्तु हृदय की अनल यों नहीं बुझेगी स्वल्प!"

(२४)

करुणामय आश्चर्य्यमय जैसा यह सुचरित्र।
वैसाही यह चित्र है रविवर्म्मा-कृत मित्र॥

२२—मालती-महिमा।

(१)

"है आज तो दिवस कृष्ण-चतुर्दशी का,
पूरा विकाश फिर क्यों यह है शशी का"।
यों चित्त को चकित जो कर डालती है,
ऐसी मयङ्कवदनी यह मालती है॥

(२)

मंत्री सु-भूरिवसु * की यह है कुमारी,
श्री देवरात†-सुत-माधव-प्राणप्यारी।
हारी विलोक इसकी छवि देव-नारी,
पूजार्थ आज हरि-मन्दिर में पधारी॥

(३)

सारी सुरङ्ग पहने अति-मोद-दात्री,
प्यारी किसे न लगती यह चारु-गात्री।
मानों तड़ित् तज अनस्थिरता अशेष,
है सोहती अरुण-अम्बुद में विशेष॥

(४)

पुष्पादि से ग्रथित सुन्दर रूप-राशी,
आलोक आज इसकी यह केशपाशी।
रक्खे हुए मणि-फणोपरि कान्तिमान,
होता किसे असित पन्नग का न ध्यान?

(५)

ये केश देख इसके मृदु माँगदार,
हे विज्ञ दर्शक! कहो तुमही विचार।
सिन्दूर रेख-मिस क्या चिकुरान्धकार‡
जिह्वा ललाट-विधु पै न रहा पसार?

---

* भूरिवसु = पद्मावती के राजा का मंत्री और मालती का पिता।

† देवरात = विदर्भाधिपति का मंत्री और माधव का पिता तथा भूरिवसु का सहपाठी सखा।

‡ चिकुर + अन्धकार = केशरूपी अन्धकार।

मालती ।

मन्त्री सु-भूरिवसु की यह है कुमारी , श्री देवरात-सुत-माधव-प्राणप्यारी ।
हारी विलोक इसकी छवि देवनारी , पूजार्थ आज हरि-मन्दिर में पधारी ॥

(६)

कन्दर्प के धनुष का गुण गान सारा ,
प्यारा तभी तक सखे ! रहता हमारा ।
होते हमें स्मरण हैं जब लों न नीके ,
भ्रू-चाप ये युगल मञ्जुल मालती के ॥

(७)

आलोक नेत्र इसके मृग से विशाल ,
डूबे सलज्ज जल में झष* कञ्ज-जाल ।
जो बात आप यह सत्य नहीं बताते ,
तो क्यों बिना सलिल वे अति ताप पाते ?

(८)

निष्कम्प-दीपक-शिखा सम दीप्तिमान ,
है नाक जो न यह कीर-मुखोपमान ।
तो द्वार बन्द कर ओष्ठ-कपाट से यों ,
तद्दन्त-दाड़िम मुखालय में छिपे क्यों ?

(९)

गोरे, गुलाब-दल से अति गोल गोल ,
कैसे मनोज्ञ युग ये इसके कपोल ।
मानों शरीर-गृह में विधि के बनाये ,
कन्दर्प के मुकुर मञ्जुल हैं सुहाये ॥

(१०)

ताम्बूल से अधर लाल नहीं बने हैं ,
योंहीं स्वभाव-वश सुन्दरता-सने हैं ।
दृष्टान्त हैं प्रकट ये इसके प्रधान ,
"हैं चाहते न कुछ भूषण रूपवान" ॥

(११)

भ्रू-चाप और दृग-बाण विषाक्त जान ,
पाता न राहु मन में भय जो महान ।
तो पूर्ण-चन्द्र-भ्रम से वह दैत्य पापी ,
क्या मालती-वदन को तजता कदापि ?

(१२)

है दाहिने कर-सरोरुह में निराली ,
शोभायमान शिव-पूजन-वस्तु-थाली ।
लम्बायमान जघनों तक बाहु वाम ,
है योग कञ्ज-कदली-द्रुम सा ललाम ॥

(१३)

निःशेष सुन्दर वधू-कुल में मनोज्ञ ,
पाई गई जब यही बलि-दान योग्य * ।
कैसी ललाम फिर है यह मञ्जुदेही ,
कीजे विचार इसका इस बात से ही ॥

(१४)

प्रख्यात जो कवि हुआ भवभूति† नाम ,
गाया चरित्र इसका उसने ललाम ।
नाना-रसार्द्र इसका वह सच्चरित्र ,
है सर्वथा मनन-योग्य बड़ा पवित्र ।

---

*झष = मीन ।

* अघोरघण्ट नामक एक कापालिक था । उसे मन्त्र-सिद्धि के लिए एक अलौकिक रूपवती सुन्दरी अपनी आराध्य देवता कराला देवी को बलि देनी थी । बेचारी मालती ही बलिदान के योग्य मानी गई । अतएव रात में सोती हुई वह मन्त्र द्वारा उक्त देवी के मन्दिर में लाई गई । जागने पर उसने जब अपने को इस विपत्ति में देखा तब वह निज जनों को पुकार पुकार कर बड़े आर्त्त-स्वर से रोने-चिल्लाने लगी । इसी समय मालती की प्राप्ति से निराश होकर (निराश होने का कारण १५·१६ और १७ वें पद्य में वर्णित है) श्मशान में शरीर त्यागने के लिए माधव घूम रहा था । वहाँ से थोड़ी ही दूर पर कराला देवी का वह मन्दिर था । उसने मालती का रोना सुन कर मन्दिर में जाके अघोरघण्ट का वध किया और मालती को बचाया । उस समय अघोरघण्ट की शिष्या कपालकुण्डला माधव से बदला लेने की चिन्ता करती हुई वहाँ से भाग गई ।

† महाकवि भवभूति—"मालती-माधव" नामक नाटक का रचयिता ।

(१५)

धर्म्मानुसार*जब ब्राह्म-विवाह-द्वारा,
थी होनहार यह माधव-धर्म्मदारा।
आपत्ति एक उस काल हुई महान,
सत्कार्य्य में प्रकट विघ्न हुए कहाँ न ?

(१६)

पद्मावती-नृपति का सु-कृपाधिकारी,
था एक जो मनुज नन्दन-नामधारी।
अन्याय-पूर्ण उसने कर यत्न नाना
चाहा इसे निज वधू सहसा बनाना॥

(१७)

भूपाल भी कर सका न उसे निराश,
की मंत्रि-भूरिवसु से स्वमति-प्रकाश।
दुःखी हुआ वह उसे सुन के महान,
नाहीं नहीं कर सका निज स्वामि जान॥

(१८)

ज्योंही चरित्र यह माधव ने निहारा,
होके हताश उसने मरना विचारा;
होता न दुःसह शरीर-वियोग वैसा,
होता निज-प्रिय-वियोग असह्य जैसा॥

(१९)

ऐसे व्यथा-समय में तप को विहाय,
"कामन्दकी†" अति हुई इनकी सहाय।
चातुर्य्य-युक्त उसने सब कार्य साधा,
उद्योग दूर करता सब विघ्न-बाधा॥

(२०)

जो निन्द्य नन्दन मनोहर मालती से,
था चाहता निज विवाह प्रबन्ध जी से।
खोनी पड़ी स्व-भगिनी उलटी उसी को,
देते सदा जय जगत्-प्रभु सत्य ही को॥

(२१)

उद्वाह उत्सव-अनन्तर भी न माना,
चाहा विपक्ष-कुल ने इनको सताना।
होती परन्तु जिस पै प्रभु की दया है,
होता अनिष्ट उसका किसका किया है॥

(२२)

रच कर जिसने यों मालती का सुचित्र,
ललित कर दिया है और भी तच्चरित्र।
वह नृप रविवर्म्मा, चित्रकार-प्रधान,
अहह! अब नहीं है, विश्व में विद्यमान!

२३—भीष्म-प्रतिज्ञा।

(१)

विलोक शोभा विविध प्रकार
जी में सुखी होकर एक बार।
यशोधनी शान्तनु भूप प्यारे
थे घूमते श्रीयमुना-किनारे॥

(२)

वहाँ उन्होंने अति ही विचित्र
आघ्राण की एक सुगन्ध मित्र!

---

*देवरात और भूरिवसु जब गुरु-गृह में विद्याभ्यास करते थे तब उन दोनों का यह विचार हुआ कि यदि हम दो में से किसी एक को पुत्र और दूसरे को पुत्री हुई, तो हम उनका परस्पर विवाह करेंगे। इसी प्रतिज्ञानुसार मालती माधव को ब्याही जानेवाली थी। इसी लिए "धर्म्मानुसार" कहा गया।

† कामन्दकी एक बाल-ब्रह्मचारिणी तपस्विनी तथा देवरात और भूरिवसु की गुरु-भगिनी थी। कुछ काल से वह पद्मावती पुरी में ही रहने लगी थी। उसने लड़कपन में इन दोनों के साथ विद्याध्ययन किया था और उन दोनों ने परस्पर सम्बन्धी होने की प्रतिज्ञा भी उसके सामने ही की थी। उनकी उक्त प्रतिज्ञा का उसको ध्यान था और वह इनके कुटुम्ब से अत्यन्त प्रीति करती थी। इससे उसने नाना प्रकार के कोशल से मालती का माधव से, और नन्दन की बहिन मदयन्तिका का माधव के मित्र मकरन्द से, गान्धर्व विवाह करवा दिया।

भीष्म प्रतिज्ञा।

कैसे मुझे हा ! अब प्राप्त होगी ?
क्या हो सकूँगा उसका वियोगी ?

(१६)

प्राणान्तकारी उसका वियोग
हुआ मुझे निश्चय काल-रोग ।
अवश्य ही मैं उससे मरूँगा,
न किन्तु वैसा प्रण मैं करूँगा ॥

(१७)

वैसी प्रतिज्ञा कर दुःख खोना,
पुत्रघ्न मानों जग बीच होना ।
क्या तात देवव्रत का रहा मैं
जो मान लूँ धीवर का कहा मैं ? ॥

(१८)

चाहे मरूँ मैं दुख से भले ही,
चाहे बनूँ भस्म विना जले ही ।
स्वीकार है मृत्यु मुझे घनिष्ट,
न किन्तु देवव्रत का अनिष्ट ॥

(१९)

है पुत्र देवव्रत वीर मेरा,
गुणी, प्रतापी, रणधीर मेरा ।
वही अकेला मम वंश-वृक्ष,
न पुत्र लाखों उसके समक्ष ॥

(२०)

सारे गुणों में वह अद्वितीय
आज्ञानुकारी सुत है मदीय ।
गाऊँ कहाँ लों उसकी कथा मैं,
होने न दूँगा उसको व्यथा मैं ॥

(२१)

असह्य ज्यों सत्यवती-वियोग,
त्यों इष्ट देवव्रत-राज्य-भोग ।
न किन्तु दोनों सुख ये मिलेंगे,
न प्राण मेरे मुझसे खिलेंगे ॥

(२२)

कैवर्त्त से सत्यवती सही मैं
लूँ छीन, चाहूँ यदि आज ही मैं ।
परन्तु ऐसा करना अनीति,
अन्याय, दुष्कर्म्म, अधर्म्म-रीति ॥

(२३)

हो क्यों न मज्जीवन आज नष्ट,
दूँगा प्रजा को न परन्तु कष्ट ।
सदा प्रजा-पालन राज-धर्म्म
कैसे तजूँ मैं यह मुख्य कर्म्म ?

(२४)

हे पञ्चबाण, स्मर, काम, मार,
तू बाण चाहे जितने प्रहार ।
अन्याय मैं किन्तु नहीं करूँगा,
न स्वत्व देवव्रत का हरूँगा" ॥

(२५)

यों नित्य चिन्ता करके नरेश,
न चित्त में पाकर शान्ति-लेश ।
ग्रीष्मार्त-पद्माकर के समान,
होने लगे क्षीण, दुखी महान ॥

(२६)

भूपाल की व्याकुलता विलोक,
कुमार गाङ्गेय हुए सशोक ।
अतः उन्होंने नृप-मंत्रि द्वारा,
जाना पिता का दुख-हेतु सारा ॥

(२७)

"स्वयं दुखी तात हुए मदर्थ
वात्सल्य ऐसा उनका समर्थ ।
मैं किन्तु ऐसा अति हूँ निकृष्ट,
जो देखता हूँ उनका अरिष्ट !"

(२८)

यों सोच देवव्रत स्वार्थ त्याग
प्यारे पिता के हित सानुराग ।

थी चित्तहारी वह गन्ध ऐसी
पाई गई पूर्व कभी न जैसी ॥

(३)

भूपाल ऐसे उससे लुभाने,
शरीर की भी सुधि को भुलाने।
चले प्रमोदार्णव में समाने,
पता ठिकाना उसका लगाने ॥

(४)

देखी उन्होंने तब एक बाला,
जो कान्ति से थी करती उजाला।
मलिन्द ने फुल्ल तथा विशाला,
मानों निहारी अरविन्द-माला ॥

(५)

कैवर्त-कन्या वह सुन्दरी थी,
बिम्बाधरी और कृशोदरी थी।
मनोभिरामा मृगलोचनी थी,
मनोज-रामा मद-मोचनी थी ॥

(६)

सुवर्ण-गात्रोद्भव-गन्ध द्वारा
फैलाय कोसों निज नाम प्यारा।
रम्भोरु मानों वह थी दिखाती—
सुवर्ण में भी मृदु गन्ध आती !

(७)

तत्काल जी को वह मोह लेती
थी दर्शकों को अति मोद देती।
विलोक तद्रूप विचित्र कान्ति
थी दूर होती सब शान्ति दान्ति* ॥

(८)

यों देख शोभा उसकी गभीर,
तत्काल भूपाल हुए अधीर।
क्या देख पूर्णेन्दु नितान्त कान्त,
कभी रहा है सलिलेश शान्त ?

(९)

पुनः उन्होंने उससे सकाम
हो मुग्ध पूछा जब नाम, धाम।
बोली अहा ! सो प्रमदा प्रवीणा,
मानों बजी मञ्जुल मिष्ट वीणा ॥

(१०)

"हो आपका मङ्गल सर्व काल,
जानो मुझे सत्यवती नृपाल !
नौका चलाती सुकृतार्थ-काज,
पिता महात्मा मम दास-राज" ॥

(११)

थी मिष्ट वाणी उसकी विशेष,
हुए अतः और सुखी नरेश।
रसालशाखा पिक-गान-सङ्ग,
देती नहीं क्या दुगनी उमङ्ग ?

(१२)

पुनः उन्होंने उसके पिता से
माँगा उसे जाकर नम्रता से।
किन्तु प्रतिज्ञा अति स्वार्थ-सानी
यों पूर्व चाही उसने करानी ॥

(१३)

"सन्तान जो सत्यवती जनेगी
राज्याधिकारी वह ही बनेगी"।
कामार्त थे यद्यपि वे, तथापि,
न की प्रतिज्ञा नृप ने कदापि ॥

(१४)

लौटे अतः सत्यवती बिना ही,
पाया उन्होंने दुख चित्त-दाही।
पावें व्यथा क्यों न सदा अनन्त,
अकार्य्य तो भी करते न सन्त ॥

(१५)

पीनस्तनी, योजन-गन्ध-दात्री,
कैवर्त-पुत्री वह प्रेम-पात्री।

*जितेन्द्रियता।

तुरन्त मंत्री-वर के समेत
गये स्वयं धीवर के निकेत ॥

(२९)

आया उन्हें धीवर गेह देख,
अभ्यर्थना की उनकी विशेष।
सवंश पूजा करके तुरन्त,
सौभाग्य माना अपना अनन्त ॥

(३०)

सप्रेम बोला तब राज-मंत्री—
माँगी सुता शान्तनु शोक-हंत्री।
परन्तु हा! धीवर ने न मानी,
चाही प्रतिज्ञा वह ही करानी ॥

(३१)

अमात्य ने खूब उसे मनाया,
अन्यान्य अर्थार्थ तथा लुभाया।
न किन्तु माना जब दास एक,
जी में हुआ रोष उसे कुछेक ॥

(३२)

परन्तु सो कोप अयोग्य जान,
गाङ्गेय ने शान्त किया प्रधान।
पुनः स्वयं वे निज वंश-केतु
बोले पिता के दुख-नाश हेतु ॥

(३३)

"प्यारे पिता के हित दासराज!
दीजे स्वकन्या तज सोच आज।
हैं कामनायें जितनी तुम्हारी
हैं वे मुझे स्वीकृत मान्य सारी" ॥

(३४)

पुनः उन्होंने कर को उठाके,
औदार्य निःस्वार्थ-भरा दिखा के।
प्यारे पिता के हित मोद पाके,
की यों प्रतिज्ञा सबको सुना के ॥

(३५)

"है नाम देवव्रत सत्य मेरा,
है सत्य का ही व्रत नित्य मेरा।
अतः पिता के दुख-नाशनार्थ,
मैं हूँ प्रतिज्ञा करता यथार्थ ॥

(३६)

मैं राज्य की चाह नहीं करूँगा,
है जो तुम्हें इष्ट वही करूँगा।
सन्तान जो सत्यवती जनेगी,
राज्याधिकारी वह ही बनेगी ॥

(३७)

विवाह भी मैं न कभी करूँगा,
आजन्म आद्याश्रम* में रहूँगा।
निश्चिन्त यों सत्यवती सुखी हो,
सन्तान से भी न कभी दुखी हो ॥

(३८)

जो चाहते थे तुम दासराज,
मैंने किये सो प्रण सर्व आज।
जो जो कहो और वही करूँ मैं,
व्यथा पिता की जड़ से हरूँ मैं" ॥

(३९)

भीष्म-प्रतिज्ञा सुन भीष्म ऐसी,
हुई अवस्था जिसकी सु जैसी।
उसे दिखाना निज शब्द द्वारा
सामर्थ्य है मित्र! नहीं हमारा ॥

(४०)

वे हाथ ऊँचा अपना उठाये,
दुर्धर्ष मुद्रा मुख की बनाये।
देखो महासागर से गभीर,
हैं भीष्म देवव्रत धीर, वीर ॥

(४१)

पीछे उन्हीं के वह वाम ओर,
है जो खड़ा चित्त किये कठोर।

* ब्रह्मचर्याश्रम।

है राज-मंत्री वह स्वामि-भक्त,
विभ्रान्त, आश्चर्यित, वा विरक्त ॥

(४२)

बायें उसी के करबद्ध, प्रार्थी,
खड़ा हुआ है वह दास स्वार्थी।
दृढ़त्व देवव्रत का विलोक,
हुए उसे क्या नहिं लाज, शोक ?

(४३)

स्व-गेह आगे वह मुक्त-केशी,
है देखिए, सत्यवती सुवेशी।
दशा न जाती उसकी बखानी,
हुई उसे क्या कुछ आत्म-ग्लानी ?

(४४)

जो तर्जनी को अधरस्थ धारे,
सो धीवर-स्त्री निज-गेह-द्वारे।
सन्तान को साथ लिये खड़ी है,
आश्चर्य्य के सागर में पड़ी है ॥

(४५)

अपूर्व कैसा यह है चरित्र,
भीष्म-प्रतिज्ञा अति ही पवित्र।
देखो उसी का यह दिव्य चित्र
विचित्र है चित्र विचित्र मित्र !

२४—राधाकृष्ण की आँख-मिचौनी।

(१)

मञ्जुल मयङ्क और भव्य भानु एक साथ
मानों हुए उदित अतीव अभिराम ये।
मानों हैं कान्तिमान नलिनी और इन्दीवर
मानों मिले चम्पक-तमाल छविधाम ये ॥
मानों मणि-काञ्चन का योग मनोहारी यह
चञ्चला-पयोद मानों सोहते ललाम ये।
मानों रति-काम, मानों प्रकटे हैं माया-ब्रह्म,
देखो, पूर्ण-काम शुभ-नाम श्यामा-श्याम ये ॥

(२)

यमुना-किनारे शिला-ऊपर प्रसन्न चित्त
बैठे देख एक बार राधा सुकुमारी को।
छिपे छिपे आये श्याम मूँदने प्रिया के दृग
हो गई परन्तु ज्ञात सारी बात प्यारी को ॥
तब हँस बोलीं "चलो देखी चतुराई, रहो,"
ऊँचे किये हाथ तथा भेंटने विहारी को।
देखो मित्र ! सरस्वती ने राजा रविवर्म्मा के
अङ्कित किया है इसी दृश्य मनोहारी को ॥

(३)

देखते ही बनती है चित्र की मनोहरता
वर्णन न हो सकती सुखमा अपार है।
होते रति-काम अङ्ग अङ्ग पै निछावर हैं
और उपमानों की कथा का क्या विचार है ?
पाता है तृप्ति मन रञ्चक भी इससे नहीं
दीखता नया ही यह दृश्य बार बार है।
ज्ञात हो नवीन नित्य सोई रमणीयता है,
सोई सुखमा है, सोई रूप शोभागार है ॥

(४)

उन्नतपने से किया अञ्चल जिन्होंने दूर
धारण किये जो महा अनुपम ओज हैं।
कन्दुक, कलश और कञ्जरों के कुम्भ तथा
लज्जित विलोक जिन्हें सम्पुट सरोज हैं ॥
मिलती है एक भी न उपमा अनुकूल कहीं
हार रहे यद्यपि कवीन्द्र कर खोज हैं।
शोभित अतीव कञ्चुकी में चन्द्रहारयुक्त
राधा के उरोजों से ये राधा के उरोज हैं ॥

(५)

त्याग पूर्ण चन्द्रमा से आज क्या विरोध-भाव
मेल करते हैं कञ्ज-संयुत मृणाल ये।
फूली हुई किंवा कल्पवृक्ष की लताएँ युग
लिपट रही हैं देख निकट तमाल ये ॥

श्रीराधा-कृष्ण की आँखमिचौनी ।

हैं मूँदते नयन ये हरि राधिका के , बिम्बाधरी विधुमुखी सुखसाधिका के ।
वे हास्यपूर्वक उठाकर युग्म पाणी , हैं रोकतीं प्रणय से कह व्यङ्ग्य वाणी ॥
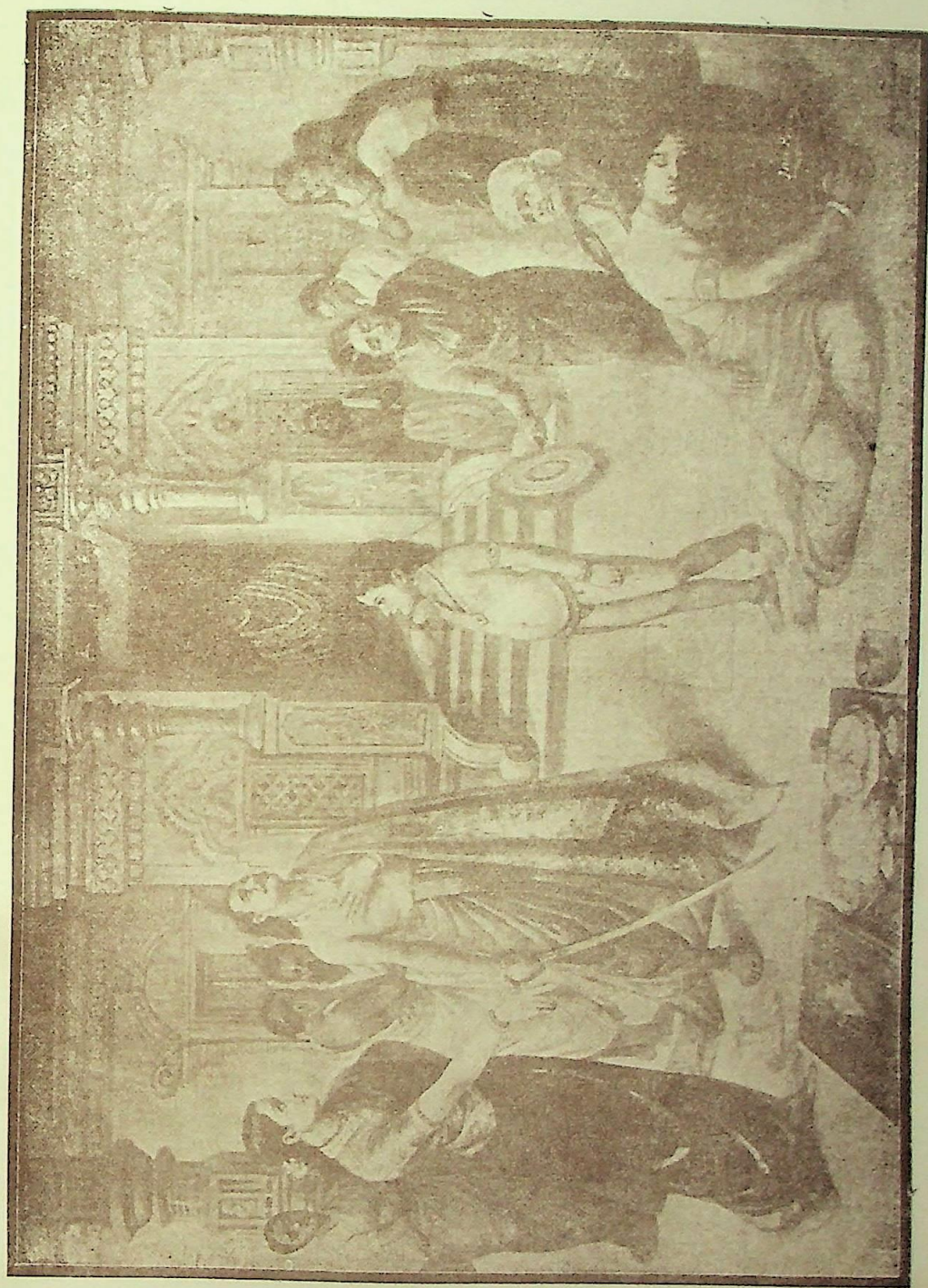
रुकमाङ्गद श्रौर मोहिनी ।

करके भी सर्वस्व समर्पण , पालन करते हैं सज्जन प्रण ।
देखो ! नृप रुकमाङ्गद विश्रुत , सुत-सिर देने को हैं प्रस्तुत ॥

किंवा रसराज के गले में प्रेम-पाश निज
हर्षित हो आज रही शोभा-वधू डाल ये ।
किंवा हुए ऊँचे भेटने को नन्द-नन्दन को
भूषणों से भूषित प्रिया के बाहु-जाल ये ॥

(६)

फूले हुए कञ्चन के कञ्ज-कोष-मध्य यह
मानों जड़ी मोतियों की पंक्ति कान्तिमान है ।
मानों शुभ्र शरद-सुधाकर के अङ्क-मध्य
तारावली शोभित महान रूपवान है ॥
किंवा महा-शोभा-सुन्दरी के दिव्य दर्पण में
दामिनी के बिम्ब का विकास भासमान है ।
देखिए, व्रजेश्वरी के प्यारे मुख-मण्डल में
कैसी दीप्तिमान मन्द मन्द मुसकान है ॥

(७)

मञ्जु मनोरञ्जन जो अञ्जन से रञ्जित हैं
भञ्जन किये जो मान खञ्जनों का हाल हैं ।
होती मृगलोचनों में ऐसी महा शोभा कहाँ,
होते कहाँ ऐसे कमनीय मीन-जाल हैं ॥
देखिए विचार वृषभानुनन्दिनी के ये
क्या ही प्रेम-रंग-भरे लोचन विशाल हैं ।
मेरे जान मानों रूपसिन्धु के खिले ये कञ्ज
हरि-दृग-भृङ्ग जहाँ घूमते निहाल हैं ॥

(८)

छावेंगे न नील-मणियों के तेज भूतल में
जल में भी सघन सिवार जल जावेंगे ।
गावेंगे न गीत मदमत्त हो मलिन्द-वृन्द
पत्तों को उभार के मयूर न सजावेंगे ॥
आवेंगे न बाहर भुजङ्ग निज बाँबी से
गर्ज गर्ज वारिद न भेरी सी बजावेंगे ।
पावेंगे न कोई व्रजरानी के शिरोरुहों को
सारे उपमान एक साथही लजावेंगे ॥

(९)

रक्खे हुए हाथ पिया कन्धे पर पीछे खड़े
देख रहे शोभा व्रजराज ये सुहाते हैं ।
हटती है दृष्टि नहीं नेक मुखमण्डल से
जैसे चञ्चु चन्द्र से चकोर न हटाते हैं ॥
होते हैं जिसमें सभी लोक अनायास लीन
बार बार वेद जिसे सर्वाधार गाते हैं ।
देखो उनके ही उसी हर्षित शरीर-मध्य
प्यारी-स्पर्श-दर्शन के हर्ष न समाते हैं ॥

(१०)

दृग-फलदायी आहा ! कैसे दिव्य दर्शन हैं
सुषमा अलौकिक न दृष्टि किसे आती है ।
करते हैं प्रवेश मन, प्राण मानों आँखों में
किसकी न दृष्टि यहाँ नित्य ललचाती है ॥
भूल जाता सुधि बुधि शरीर की भी कौन नहीं
किसके न अङ्गों में उमङ्ग भर जाती है ॥
चञ्चला-समेत घन श्याम देख मोर की सी
किसी की न होती दशा मोद-मदमाती है ?

२५—रुक्माङ्गद और मोहिनी ।

अथवा

प्रण-पालन ।

---

(१)

न्यायी, प्रजापालक, शूर, सन्मति,
था एक रुक्माङ्गद नाम भूपति ।
सर्वत्र फैला उसका प्रताप था,
न राज्य में रञ्चक-मात्र पाप था ॥

(२)

लेने परीक्षा उसके सकर्म्म की
वेदोक्त भूपोचित धैर्य्य-धर्म की ।
भेजी सुरों ने मिल एक अप्सरा,
थी मोहिनी नामक जो मनोहरा ॥

(३)

अपूर्व शोभा उसकी निहार के
दिव्याङ्गना भूप उसे विचार के।
सराह जी में विधि-कौशलाद्भुत
हो मुग्ध बोले यह प्रेम-संयुत—

(४)

"लज्जाभिनम्रे ! प्रियदर्शने ! अहो !
क्या चाहती हो तुम, कौन हो कहो ?।
कुलीनता वा गुरुता, पवित्रता,
बता रहा है तव रूप ही स्वतः॥

(५)

"अवश्य कोई तुम दिव्य सुन्दरी,
रहो हमारे गृह सद्गुणागरी।
जो जो कहोगी तुम चन्द्रिकोपम !
पूरी करेंगे तव कामना हम"॥

(६)

वाग्दान यों देकर, योग्य रीति से
लाये उसे वे निज गेह प्रीति से।
सन्तुष्ट होके तब प्रेम में पगे
सानन्द दोनों सुख भोगने लगे॥

(७)

एकादशी के दिन एक बार हा !
यों मोहिनी ने नरपाल से कहा—
"दिव्यान्न हैं षड्रस-युक्त प्रस्तुत,
आओ करें भोजन प्रीति-संयुत"॥

(८)

यों मोहिनी की सुन बात दुस्सह,
तत्काल रुक्माङ्गद ने कहा यह—
"एकादशी का व्रत आज नैगम,
कैसे चलें भोजन को कहो हम" ?॥

(९)

महीप ने यों उससे कहा जब
हो रुष्ट बोली वह सुन्दरी तब,
"था क्या तुम्हारा प्रण भूपते ! यही,
न याद किंवा उसकी तुम्हें रही !!

(१०)

"सोचो कहा था तुमने नरोत्तम !
पूरी करेंगे तव कामना हम"।
सो हो प्रतिज्ञा तुम टालते अब,
है क्या अहो ! धार्मिकता यही तव ?

(११)

"या तो अभी भोजन आप कीजिए,
कुमार का या सिर काट दीजिए।
प्यारा नहीं तो निज धर्म्म त्यागिए,
न हूजिए मोहित भूप ! जागिए"॥

(१२)

ये मर्म्म-भेदी सुन वाक्य भूपति
वे दग्ध की भाँति दुखी हुए अति।
बैठे मही में निज थाम के सिर,
यों मोहिनी से कहने लगे फिर—॥

(१३)

"यों क्रूर वाणी कहते हुए मुझे,
दया न आई सुकुमारि ! क्या तुझे ?
अवश्य ही तू उर-हीन है अहो !
क्यों अन्यथा यों कहती कठोर हो॥

(१४)

"तू देखने में अति दिव्य, कोमल,
है किन्तु तेरे मन में हलाहल !
हुआ मुझे हा ! यह आज ज्ञात है,
सुधांशु में भी गरल-प्रपात है॥

(१५)

"जो प्राण ही की अति चाह हो तुझे,
न और की जो परवाह हो तुझे।
हो रक्त की ही तुझको तृषा कहीं,
तो माँग लेती मम शीश क्यों नहीं ?

(१६)

"कुमार मेरा सकुमार-गात्र है;
राज्याधिकारी वह एक-मात्र है।
अत्यन्त ही अल्प-वयस्क, छात्र है,
कैसे हुआ सो तव रोष-पात्र है ?

(१७)

'अल्पायु है, किन्तु मदर्थ निश्चय
सहर्ष देगा वह शीश निर्भय।
परन्तु हा ! हा ! यह कार्य्य दुष्कर,
स्वयं करेंगे मम पाणि क्यों कर ?

(१८)

"एकादशी के दिन आर्य्य-भक्त को
है देखना भी नहिँ योग्य रक्त को।
परन्तु हा ! रक्त बहा स्वयं घना
मुझे पड़ेगा सुत-शीश काटना !

(१६)

"क्या हाय ! मेरे इस दीर्घ भाल में
यही लिखा था विधि ! जन्म-काल में !
दुर्दैव ! मैंने अपराध क्या किया ?
यों प्राण से भी गुरु दण्ड जो दिया ॥

(२०)

"चाहे विना ही अयि मृत्यु तू सदा
है प्राप्त होती सबको स्वयं यदा।
तू चाहने से फिर हे दयावति !
क्यों प्राप्त होती मुझको न सम्प्रति ?"

(२१)

हुई उन्हें यों कहते अचेतना
होती महा घोर अनिष्ट चिन्तना।
जाना सभी ने इस बात को द्रुत,
होते बुरे वृत्त तुरन्त विश्रुत ॥

(२२)

अचेत होने पर भी नृपाल को
मिली अहो ! शान्ति न दीर्घ काल को !
किये गये जो उपचार सत्वर
मानें हुवे वे अपकार दुष्कर ॥

(२३)

सुने समाचार कुमार ने जब,
अत्यन्त आनन्द हुआ उसे तब।
जाता पिता के हित शीश जान के
सौभाग्य माना अति मोद मान के ॥

(२४)

"होगा पिता का प्रण पूर्ण सर्वथा,
भागी बनेंगे हम मोक्ष के तथा।
यों सोच बोला वह हो सुखी मन,
आया बड़े काम अनित्य जीवन" ! ॥

(२५)

स्वधर्म्म-रक्षार्थ महीप भी फिर
देते हुए प्रस्तुत पुत्र का सिर।
हैं त्यागते सज्जन प्राण तत्क्षण ;
न त्यागते किन्तु कदापि हैं प्रण ॥

(२६)

हे मित्र देखो इस चित्र में सही
गया दिखाया सब दृश्य है यही।
धर्म्मार्थ देने सुत-शीश देखिये
वे भूप रुक्माङ्गद खड्ग हैं लिये ॥

(२७)

समक्ष ही स्वस्थ खड़ा कुमार है,
वात्सल्य आगार महा उदार है।
जो हो रही मूर्च्छित दर्शनीय है।
वीर-प्रसू सो जननी तदीय है ॥

(२८)

जो भामिनी भूप-समीप है खड़ी
है मोहिनी ही वह निष्ठुरा बड़ी।
वाग्बाण-द्वारा उनका दुखी मन
पुनः पुनः है करती विभेदन ॥

(२६)

"विलम्ब का है नृप काम क्या अब ?
पूरा करोगे तुम धर्म्म को कब ?
था जो तुम्हारा इस भाँति का हिया,
तो व्यर्थ ही क्यों प्रण पूर्व था किया ?"

(३०)

यों छोड़ते देख उसे गिरा-शिखा।
हो तात के सन्मुख कण्ठ को दिखा।
सानन्द मानों मुख से सुधा बहा,
कुमार ने यों नरपाल से कहा— ॥

(३१)

हे तात ! दुःखी मत हूजिए हिये,
स्वधर्म्म-रक्षा कर पुण्य लीजिये।
"शुभस्य शीघ्रम्" यह याद कीजिए,
सानन्द मेरा सिर-दान दीजिए ॥

(३२)

"अनित्य है जीवन, देह नश्य है,
कभी सभी को मरना अवश्य है।
धर्म्मार्थ देते सिर-दान सम्मुख,
तो चाहिये क्यों करना वृथा दुख" ?

(३३)

कुमार से यों सुन के महीपति,
हो और भी व्याकुल चित्त में अति।
विशाल वक्षोपरि हाथ धार के,
बोले किसी भाँति दशा विसार के ॥

(३४)

जो धर्म्म ही को निज बन्धु जानते,
जो सत्य को ईश्वर-तुल्य मानते।
न त्यागते जो जन वेद-पद्धति,
होती हरे ! क्या उनकी यही गति !!!"

(३५)

हो शान्त ऐसा कह एक बार,
ज्यों ही लगे वे करने प्रहार।
हो व्यक्त त्यों ही हरि रोक हाथ,
बोले "वरं ब्रूहि" धराधिनाथ ॥

२६—सलज्जा।

(१)

कर धरे चिबुक पर रुचिर महा,
सङ्कुचित हुई सी खड़ी यहाँ।
अवलोक तुझे लज्जिते प्रिये !
लज्जित लज्जा भी आज हिये ॥

(२)

रसना-विहीन है दृष्टि यदा,
है रसना दृष्टि-विहीन सदा।
फिर तेरा अनुपम रूप अहा !
क्यों कर यथार्थ जा सके कहा ? ॥

(३)

हो पुष्प-भार से नम्र लता
धारण करती जो सुन्दरता।
यह तेरी मञ्जुल-मूर्त्ति-छटा
देती है उसका मान घटा।

(४)

कर ओट वदन को अञ्चल की
तूने जो दृष्टि अचञ्चल की।
जिसने यह रूप निहार लिया
मानों अपना मन हार दिया ॥

(५)

लम्बित नितम्ब-पर्यन्त पड़े
हैं मानों काले नाग अड़े।
ये तेरे कोमल बाल बड़े
हर लेते हैं मन खड़े खड़े ॥

(६)

होकर जब चन्द्र कलङ्कित भी
प्रकटित होते रुकता न कभी।

सलज्जा ।

लज्जा-समान आभरण कहीं, होता है एक प्रधान नहीं ।
है वेष-भाव अद्‌भुत जिसका, दृष्टान्त सलज्जा है इसका ॥
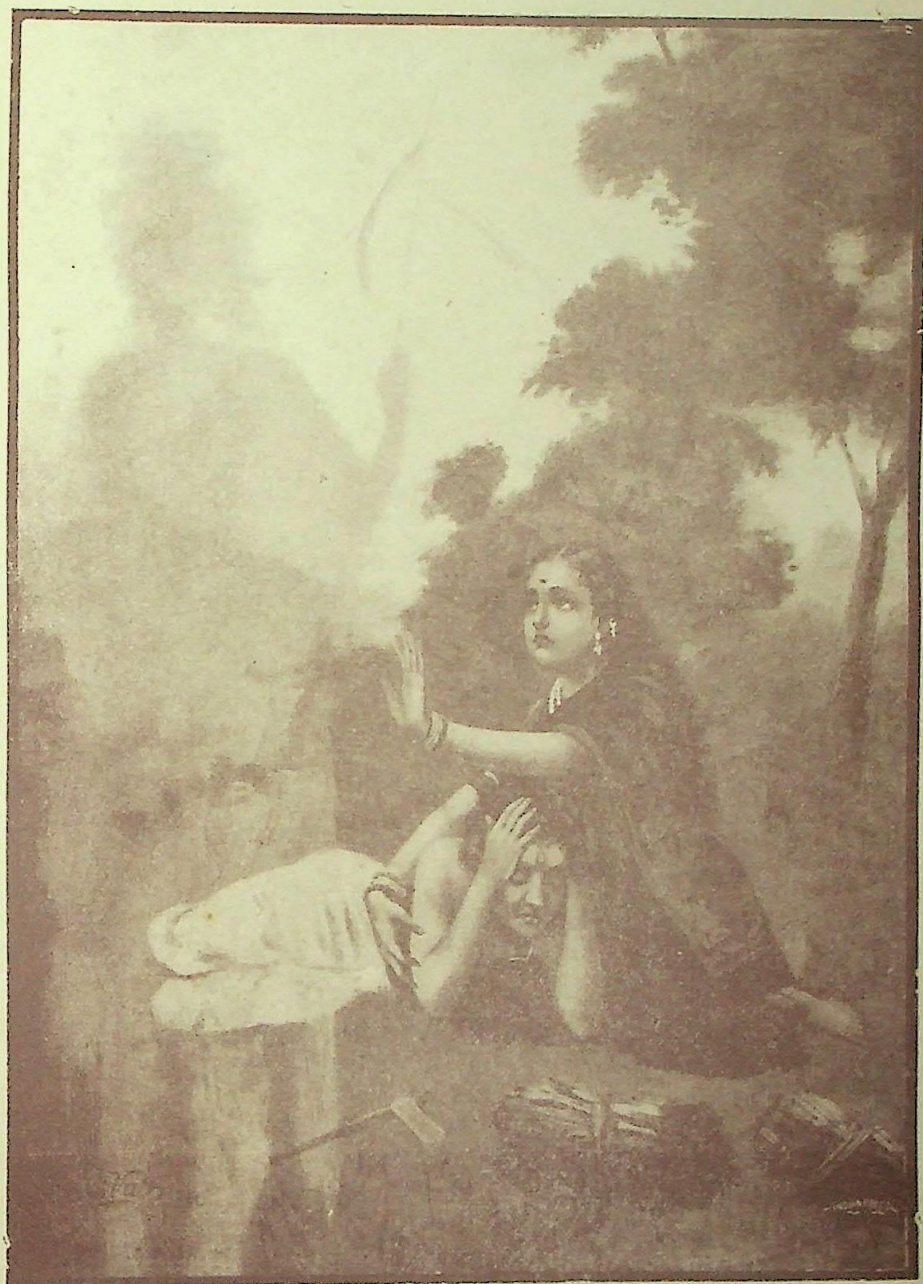
सती सावित्री ।

सावित्री की गोद में क्षीण, दीन ; लेटे हैं ये सत्यवान् मोह-लीन ।
देखो हैं वे पास ही धर्मराज ; लेने आये जो उन्हें आप आज ॥

फिर तव मनोज्ञ मुख-देख कहीं
आश्चर्य कौन जो छिपे नहीं ॥

(७)

कुछ मुँदे और कुछ खुले हुए
सम-भाव परस्पर तुले हुए ।
ये देख विलोचन बड़े बड़े
शतपत्र सड़ेंगे पड़े पड़े ॥

(८)

पाई न प्रभा पङ्कज-गण में
देखी न लालिमा दर्पण में ।
इन गोल कपोलों की सुषमा
रखती है एक नहीं उपमा ॥

(९)

निकला प्रकोष्ठ भर जो पट से
सटता सा कुछ जङ्घा-तट से ।
शोभित तेरा दक्षिण कर यों
सरिता-तट सुन्दर पुष्कर ज्यों ॥

(१०)

भेदन करके आच्छादन को
तन की द्युति मोहि रही मन को ।
अति निपुण सघन-तम-नाशन में
छिपती न यथा चपला घन में ॥

(१)

अवलोकन करती हुई मही
तू तो नीचे को देख रही ।
जा सकता नहीं परन्तु कहा
जो कुछ तेरा मन देख रहा ॥

(१२)

यों देख तुझे हे मनोहरे !
आश्चर्य्य नहीं यदि जी न भरे ।
सुखकर सुधांशु पर दृष्टि दिये
होते क्या तृप्त चकोर हिये ?

२७—सती सावित्री ।

(१)

सती सभी कुछ कर सकती हैं,
मरण-भीति तक हर सकती हैं ।
सावित्री का चरित पवित्र,
इसका उदाहरण है मित्र ! ॥

(२)

सुता अश्वपति नृप की प्यारी,
सावित्री थी अति सुकुमारी ।
उस भूपति ने कर तप भारी,
पाई थी यह एक कुमारी ॥

(३)

वह विवाह के योग्य हुई जब,
दी आज्ञा उसको नृप ने तब ।
गुणी, प्रतापी और मनोहर,
वरै स्वयं सावित्री ही वर ॥

(४)

पूज्य पिता की आज्ञा पाकर,
खोजा उसने निज समान वर ।
सत्यवान कुल-शील-उजागर,
सर्व-गुणालङ्कृत नव नागर ॥

(५)

राज्यच्युत निज अन्ध-पिता-युत,
सोच समय की गति अति अद्भुत ।
गौतम मुनि के आश्रम वन में,
रहता था वह चिन्तित मन में ॥

(६)

थे उसमें सारे गुण शोभित,
जिन पर वह थी हुई प्रलोभित ।
था पर वह अल्पायु विशेष,
एक वर्ष था जीवन शेष ॥

(७)

पर सावित्री का चित इससे
हुआ न कुछ भी विचलित उससे।
कुल-कन्या अघ से डरती हैं,
एक बार ही वर वरती हैं॥

(८)

एक एक रमणी ज्यों सम्प्रति
कर सकती ग्यारह ग्यारह पति!
थी उस समय न सुलभ रीति यह
क्यों रहती अन्यथा अटल वह?

(९)

फिर विवाह इसका विधान से,
शीघ्र हो गया सत्यवान से।
सेवा सास, ससुर, पति की नित,
तब यह करने लगी यथोचित॥

(१०)

एक दिवस वन में दम्पति जब,
समिधि ले रहे थे सहसा तब।
व्याकुल शिरोरोग से होकर,
सत्यवान गिर पड़े मही पर॥

(११)

सावित्री तत्क्षण ही पति को,
(एक-मात्र उस अपनी गति को)
सावधान गोदी में रख कर,
हुई बहुत ही दुख से कातर॥

(१२)

उसी समय अति, भीम भयङ्कर,
आ पहुँचे यमराज वहाँ पर।
उसने देव जान कर उनको,
किया प्रणाम जोड़ कर उनको॥

(१३)

फिर निज परिचय पूछे जाकर,
बोले यम यों उससे सादर।
सत्यवान को लेने आज
आया हूँ, मैं हूँ यमराज॥

(१४)

धर्म्मात्मा जीवों को लेने,
उनको स्वर्ग-भोग-सुख देने।
हे सुभगे! मैं ही आता हूँ
सादर उनको ले जाता हूँ॥

(१५)

यों कह सत्यवान के प्राण
लेकर, यम ने किया प्रयाण।
सावित्री भी हृदय थाम कर,
उनके पीछे चली धैर्य धर॥

(१६)

देख उसे यम ने समझाया,
कई तरह से ज्ञान सुनाया।
पति-ऋण से जब मुक्त बताया
बोली सत्यवान की जाया॥

(१७)

पति ही स्त्री का धर्म्म, कर्म्म है,
पति ही जीवन-प्राण-मर्म्म है।
पति-विहीन फिर हम अबला जन
रह सकती हैं क्योंकर भगवन्?

(१८)

वारि-विहीन मीन रह सकती,
विधु-वियोग जोत्स्ना सह सकती।
रूप बिना रह सकती छाया,
रह सकती पति बिना न जाया॥

(१९)

अर्द्धाङ्गी नर की नारी है,
वह न कभी उससे न्यारी है।
निगमागम कहते हैं ऐसे,
फिर पति-सङ्ग तजूँ मैं कैसे?
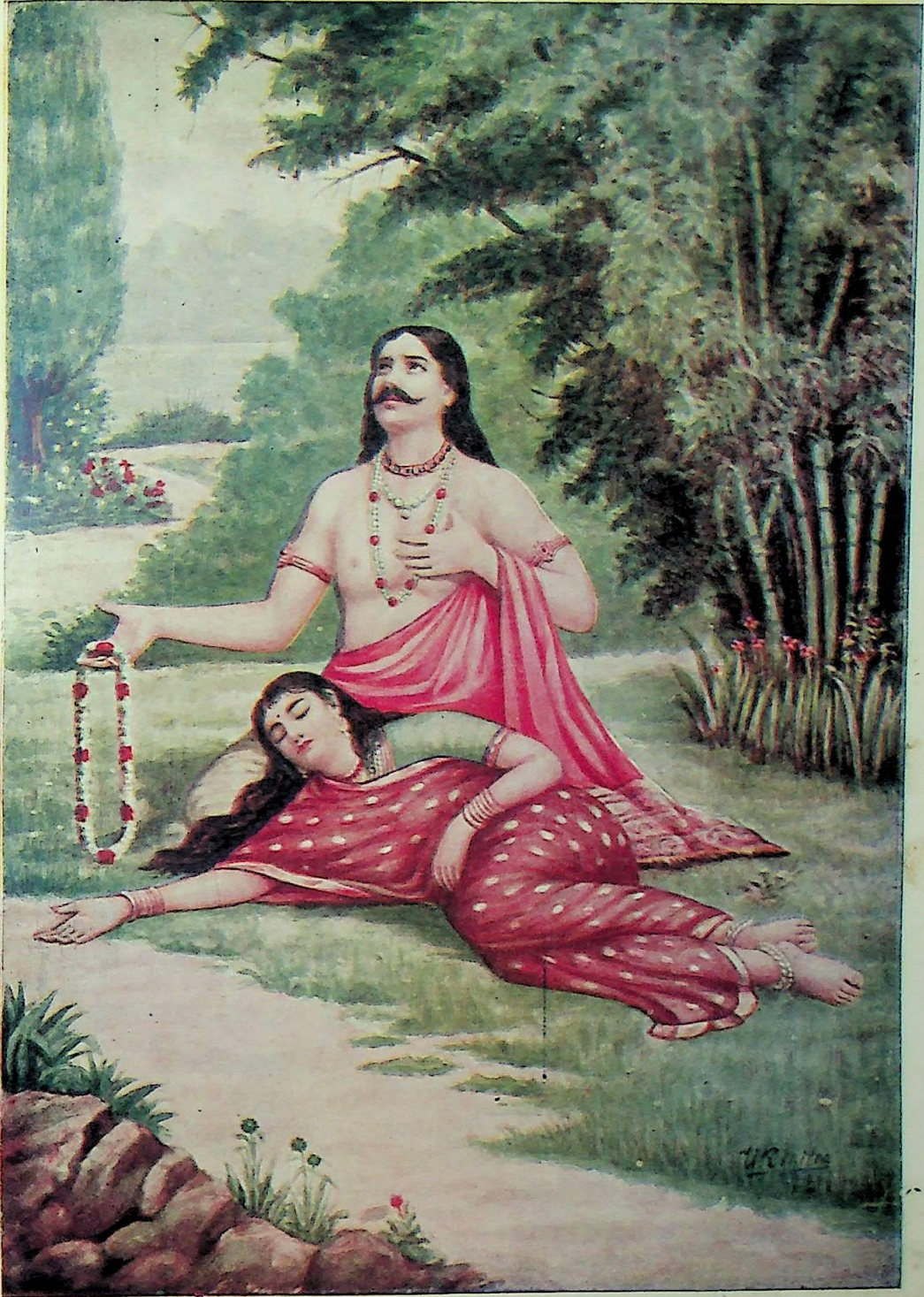
प्राणघातक माला ।

(२०)

सुन कर उसके वचन मनोहर,
हुए बहुत संतुष्ट दण्ड-धर ।
सत्यवान का जीव छोड़ कर,
उससे कहा माँगने को वर ॥

(२१)

अन्ध ससुर के लिए दृष्टि-कर
माँगा तब सावित्री ने वर ।
एक बार यों ही सब गुण-युत,
माँगे उसने सौ औरस सुत ॥

(२२)

वचन-बद्ध यम ने, इस कारण,
की उसकी पति-मृत्यु-निवारण ।
यों अनेक वर पाये उसने,
पति के प्राण बचाये उसने ॥

२८—प्राण-घातक माला ।

(रघुवंश से अनुवादित)

(१)

कर प्रजा-निरीक्षण एक बार सानन्द
वर-पुत्रवान अज प्रिया-सङ्ग स्वच्छन्द ।
करने विहार यों लगे नगर-उपवन में
ज्यों शची-सङ्ग सुरपति नन्दन-कानन में ॥

(२)

गोकर्ण-निवासी शिव को गान सुनाने
दक्षिण-सागर-तट-वीणामृत बरसाने ।
उस समय सूर्य्य का उदय-अस्त-पथ-धारे
नारद मुनि दूजे सूर्य्य-समान सिधारे ॥

(३)

उनकी वीणा पर दिव्य प्रसूनों वाली
रक्खी थी माला एक महा छविशाली ।
द्रुत मारुत ने की हरण उसे अविलम्बित
मानों अपने को सुरभित करने के हित ॥

(४)

पुष्पों के पीछे चले मधुप जो लोभित
उनसे महती * उस समय हुई यों शोभित ।
मानों समीर से व्यथित हुई दुख पाती
कज्जल से काले अश्रु गिराती जाती ॥

(५)

सो दिव्य माल अति मधु-सुगन्धि के द्वारा
कर मन्द लताओं का ऋतु-वैभव सारा ।
अति उन्नत इन्दुमती के वक्षस्थल पर
दुर्दैव-योग से गिरी अचानक आकर ॥

(६)

अति रुचिर हृदय की क्षणिक सखी वह माला
अवलोकन कर नृप-प्रिया हुई बेहाला ।
फिर नष्ट हुई जीवन-प्रदीप की ज्योती
ज्यों राहु-ग्रसित-राकेश-कौमुदी होती ॥

(७)

दी त्याग इन्द्रियों ने जिसकी मृदु काया
उस गिरती ने पति को भी साथ गिराया ।
भू-पतित तैल के विन्दु-सङ्ग तत्काला
गिरती क्या भू पर नहीं दीप की ज्वाला ?

(८)

उन दोनों के अनुचर लोगों को भारी
सुन रुदन अचानक हृदय-प्रकम्पन-कारी ।
हंसादिक खग भी डर कर सरवर में सब
आत्मीय जनों के सदृश लगे रोने तब ॥

(९)

व्यजनादिक समुचित उपचारों के कारण
नृप अज का तो हो गया मोह-विनिवारण ।
पर इन्दुमती स्थित रही उसी विध निश्चल
देती है औषध आयु-शेष में ही फल ॥

(१०)

तब हुई ज्ञात चैतन्य-बिना जो ऐसी
बेतार चढ़ी तन्त्री होती है जैसी ।

---

* महती = नारद मुनि की वीणा ।

उस प्राण-प्रिया को प्रकृत-प्रणयि ने कर से
रक्खा गोदी में यथा-स्थान आदर से।

(११)

इन्द्रियाभाव से कान्ति-रहित कान्ता-युत
दृग्गोचर ऐसे हुआ भूप सो विश्रुत।
मृग-चिह्न-लिये अति मलिन महा दुख पाता
जैसे प्रभात के समय चन्द्र दिखलाता॥

(१२)

तज सहज धैर्य्य भी गद्गद होकर दुख से
करने विलाप तब लगे महीपति मुख से।
हो तप्त लोह भी द्रवित आर्द्र होता है
फिर देह-धारियों का कहना ही क्या है?

(१३)

"जब देह-संग से दिव्य सुमन भी पल में
कर सकते आयु-विनाश अहो! भूतल में।
फिर ऐसा कौन पदार्थ हाय! त्रिभुवन में
आसके न घातक विधि के जो साधन में?

(१४)

"अथवा अन्तक जो सबका लय करता है
कोमल का कोमल ही से क्षय करता है।
पाले की मारी यहाँ पद्मिनी प्यारी
है मैंने अग्रिम उदाहरण निर्धारी॥

(१५)

"यह माला ही यदि जीवन को है हरती
तो हृदय-स्थित क्यों मेरा नाश न करती?
दुखकर विष भी हो सुधा कहीं दुख खोता
प्रभु की इच्छा से कहीं सुधा विष होता॥

(१६)

"मेरे अभाग्य से अथवा यह मृदु माला
कर दी है विधि ने कुलिश-कठोर कराला।
करके जिसने तरु का न हाय! संहारा
उस तरु की आश्रित ललित लता को मारा॥

(१७)

"करने पर भी अपराध निरन्तर तेरा
है किया न तूने तिरस्कार जब मेरा।
फिर अब सहसा अपराध-हीन इस जन से
क्यों नहीं बोलती प्रिये! वचन आनन से?

(१८)

"हे शुभ्र-हासिनी, अनुपम-रूप-निधाना,
तूने ध्रुव मुझको कपट-प्रणयि शठ जाना।
तब तो न पूछ कर कुछ मुझसे जाने को
तू चली गई परलोक न फिर आने को॥

(१९)

"प्यारी के पीछे हत जीवन यह मेरा
जो चला गया था उचित प्रेम का प्रेरा।
तो क्यों फिर उसके बिना लौट आया यह?
अतएव सहो अब कर्म-वेदना दुस्सह॥

(२०)

"ये सुरत-परिश्रम-जन्य स्वेद-कण प्यारे
तेरे आनन पर विद्यमान हैं सारे।
हो नष्ट तथा तू प्राप्त हुई परता को
धिक्कार प्राणियों की इस नश्वरता को॥

(२१)

"मन से भी मैंने किया न विप्रिय तेरा
फिर करती है क्यों त्याग प्रिये! तू मेरा।
हूँ पृथ्वी का तो नाम-मात्र को पति मैं
रखता तुझमें ही किन्तु हृदय की रति मैं॥

(२२)

"पुष्पों से पूरित कुटिल और अति काली
कर कर के कम्पित यह तेरी अलकाली।
करभोरु! पुनः तेरे आजाने का सा
करता है सूचन पवन मुझे दे आशा॥

(२३)

"हे प्राणप्रिये! इसलिए न करके देरी
है व्यथा मिटानी योग्य तुझे यों मेरी।

हिम-शैल-गुहा की तमोराशि भर पूर
करती ज्यों निशि में ज्वलित औषधी दूर ॥

(२४)

"मूँदे भीतर निशि में मिलिन्द रव-हीन
संकुचित अकेले कमल-समान मलीन।
बिखरी अलकों के सहित रहित-सम्भाषण
देता यह तेरा मुख मुझको दुख क्षण क्षण ॥

(२५)

"विधु को विभावरी और कोक को कोकी
फिर भी नित मिलती हुई गई अवलोकी।
सह सकते इससे वे वियोग-विपदा को
क्यों मुझे न मारेगी तू गई सदा को ?

(२६)

"नव-पल्लव-शय्या पर भी बारम्बार
दुखती थी तेरी देह-लता सुकुमार।
वामोरु ! बता फिर जो द्रुत दहन करेगी
किस भाँति चिता का चढ़ना सहन करेगी ?

(२७)

"क्रीड़ा-अभाव में मौन हुई कुछ बस ना
तेरी पहली एकान्त सखी यह रसना*।
अति निद्रित तेरे कठिन शोक की मारी
क्या नहीं दीखती मृतक हुई सी प्यारी ?

(२८)

"आलाप पिकों में गया मधुरताधारी
कलहंसी-गण में मन्द-गमन मनहारी।
मृगियों में चञ्चल दृष्टि गई सुखकारी
कम्पित लतिकाओं में विलास-विधि सारी ॥

(२९)

"यह सत्य, स्वर्ग की इच्छा करके जी में
तूने मेरे हित ये गुण तजे मही में।
पर तव वियोग ने जिसकी सुधि बुधि खोई
उस मेरे उर तक पहुँच न सकते कोई ॥

(३०)

"इस आम्र और इस रुचिर प्रियङ्गु-लता को
माना था तूने जोड़ सोच समता को।
सो किये बिना इनका विवाह मनमाना
इस भाँति प्रिये ! है उचित न तेरा जाना ॥

(३१)

"यह तेरा पोषित किया अशोक मनोहर
उत्पन्न करेगा हाय ! सुमन जो सुन्दर।
वह तेरा अलकाभरणरूप कोमलतर
तब दाहाञ्जलि में रक्खूँगा मैं क्यों कर ?

(३२)

"मुखरित-नूपुर-युत दुर्लभ औरों को अति
तव चरण-अनुग्रह को विचार कर सम्प्रति।
पुष्पाश्रु गिराता हुआ प्रीति का प्रेरा
करता अशोक यह शोक सुतनु ! है तेरा ॥

(३३)

"निज श्वासों के अनुकरणशील सुखदाई
वर-वकुल-प्रसूनों की रसना मनभाई।
कलकण्ठि ! गूँथ कर मेरे सङ्ग अधूरी
सोती है कैसे किये बिना ही पूरी ?

(३४)

"सुख-दुख के साथी सदा सखी जन सारे
सित-पक्ष-चन्द्र-सम सुत यह शोभाधारे।
मैं अनुरागी हूँ एक-मात्र तेरा ही
व्यवहार तदपि तेरा कठोर उरदाही ॥

(३५)

"होगया धैर्य्य सब आज विनष्ट हमारा,
रति-क्रीड़ा निबटी, मिटा ऋतूत्सव प्यारा।
गहनों का पूरा हुआ प्रयोजन सारा
शय्या सूनी होगई, गेह अँधियारा ॥

(३६)

"गृहिणी, मन्त्री, एकान्त-सखी, अति कान्ता,
सङ्गीत-कला की प्रिय शिष्या शुचि शान्ता।

---

*रसना = तागड़ी (कंधनी।)

कर निर्दयता से हरण मृत्यु ने तुझको
क्या किया न मेरा हरण बता तू मुझको ?

(३७)

"मम मुख में अर्पित हास-विलास-प्रकाशी
मद-लोचनि ! पीकर मधुरासव श्रमनाशी।
दृग-जल से दूषित जलाञ्जली निज मुख से
किस भाँति पियेगी अन्य लोक में सुख से ?

(३८)

"रहने पर भी ऐश्वर्य्य विना तेरे अब
अज-सुख गिनना चाहिए यहाँ तक ही सब।
आकृष्ट अन्य विषयों से निश्चय मेरे
थे आश्रित सारे भोग सर्वदा तेरे" ॥

२६—कीचक की नीचता।

(१)

करने को अज्ञात-वास अपना पूरा जब
नृप विराट के यहाँ रहे छिप कर पाण्डव सब।
एक समय तब देख द्रौपदी की शोभा अति,
उस पर मोहित हुआ नीच कीचक सेनापति।
यों हुई प्रकट उसकी दशा
दृग्गोचर कर रूप वर—
होता अधीर ग्रीष्मार्त गज
पुष्करिणी ज्यों देख कर ॥

(२)

यद्यपि दासी बनी वस्त्र पहने साधारण,
मलिन-वेश द्रौपदी किये रहती थी धारण।
वस्त्रानल-सम किन्तु छिपी रह सकी न शोभा,
दर्शक जन का चित्त और भी उस पर लोभा।
अति लिपटी भी शैवाल में
कमल-कली है सोहती।
घन-सघन घटा में भी घिरी
चन्द्रकला मन मोहती ॥

(३)

"हे अनुपम-सौन्दर्य-राशि ! कृशतनु, अति प्यारी,
बलिहारी यह रुचिर रूप की छटा तुम्हारी।
हो दासी के योग्य अहो ! क्या तुम सुकुमारी ?
सुधि बुधि जाती रही देख कर जिसे हमारी।
इन दृग-बाणों से विद्ध यह
मन मेरा जब से हुआ।
है खान, पान, शयनादि सब
विष समान तब से हुआ ॥

(४)

"अब हे रमणी-रत्न ! दया कर नेक निहारो,
अपने पर छल-रहित हमारी प्रीति विचारो।
हमें सदा निज दास जान हम पर अनुरागो,
रानी बन कर रहो वेश दासी का त्यागो।
है होती यद्यपि खान में
किन्तु न रहती है वहाँ।
मणि, मञ्जु मुकुट ही में उचित
पाती है शोभा महा"।

(५)

उसके ऐसे वचन श्रवण कर राजसदन में,
जलने कृष्णा लगी रोष से अपने मन में।
किन्तु समय को देख किसी विध धीरज धरके,
कहने उससे लगी शान्ति से शिक्षा करके।
है वेग यदपि अनिवार्य अति
होता मनोविकार में।
समयानुसार ही कार्य्य बुध
करते हैं संसार में ॥

(६)

अहो सूत-सुत शूर ! बचन ये विषधारा से
हैं क्या कहने योग्य तुम्हें मुझ पर-दारा से ?
जो तुमसे ही लोग कहीं अनरीति करेंगे,
तो फिर कौन मनुष्य धर्म्म का ध्यान धरेंगे ?

कीचक की नीचता ।

विराट पृथ्वीपति की सभा में, भूलुण्ठिता, कीचक की सताई ।
न्यायार्थ, देखो, नृप के समक्ष, प्रार्थी हुई है यह याज्ञसेनी ॥

(१४)

कृष्णा पर कर कोप शीघ्र झपटा वह ऐसे—
चन्द्रकला की ओर राहु झपटा हो जैसे ।
सभा-मध्य ही लात उसे उस खल ने मारी
छिन्न-लता-सम गिरी भूमि पर वह सुकुमारी ।
यह घटना पाण्डव देख कर
व्याकुल हुए नितान्त ही ।
पर प्रण-पालन हित वीर वे
रहे किसी विध शान्त ही ॥

(१५)

सम्बोधन कर सभा-मध्य फिर मत्स्यराज को,
बोली कृष्णा वचन सुनाकर सब समाज को ।
सरस कण्ठ से त्वेष-पूर्ण कहती वर वाणी,
अद्भुत छवि को प्राप्त हुई तब वह कल्याणी ।
थी ध्वनि यद्यपि आवेगमय
थी परन्तु कर्कश नहीं ।
मानों उसने बातें सभी
वीणा के द्वारा कहीं ॥

(१६)

"पाती हैं दुख जहाँ राजगृह में ही नारी,
करते अत्याचार अधम जन उन पर भारी ।
सब प्रकार विपरीत जहाँ की रीति निहारी,
अधिकारी ही स्वयं जहाँ हैं पापाचारी ।
है लज्जा रहनी अति कठिन
भले मानसों की जहाँ ।
हे मत्स्यराज ! किस भाँति तुम
बने प्रजापालक वहाँ ? ॥

(१७)

"छोड़ धर्म्म की रीति, तोड़ मर्यादा सारी,
भरी सभा में लात मुझे कीचक ने मारी ।
उसका यह अन्याय देख कर भी दुखदायी,
न्यायासन पर रहे मौन जो बन कर न्यायी ।
हे वयोवृद्ध नरनाथ ! क्या
यही तुम्हारा धर्म्म है ?
क्या यही तुम्हारी कीर्त्तिमय
राजनीति का मर्म्म है ? ॥

(१८)

"प्राणों से भी अधिक पाण्डवों की जो प्यारी,
दासी हूँ मैं उसी द्रौपदी की प्रियकारी ।
हाय ! आज दुर्दैव-विवश फिरती हूँ मारी,
वचन-बद्ध हो रहे वीर-वर वे व्रतधारी ।
करता प्रहार उन पर न यों
हत विधि जो कर्कश कशा ।
तो होती मेरी क्यों यहाँ
इस प्रकार यह दुर्दशा ॥

(१९)

"अहो दयामय धर्म्मराज ! तुम आज कहाँ हो ?
पाण्डु-वंश के कल्पवृक्ष महाराज कहाँ हो ?
विना तुम्हारे आज यहाँ अनुचरी तुम्हारी
हो कर यों असहाय हाय ! पाती दुख भारी ।
जो सर्वगुणों के शरण तुम
विद्यमान होते यहाँ ।
तो इस दासी पर देव ! क्यों
पड़ती यह विपदा महा ?

(२०)

"तुमसे प्रभु की कृपा-पात्र होकर भी दासी,
मैं अनाथिनी सदृश यहाँ जाती हूँ त्रासी ।
जब अजातरिपु ! बात याद मुझको यह आती,
जाती छाती फटी दुःख दूना मैं पाती ।
हैं करदी जिसने लोप सी
इन्द्रायुध की भी कथा ।
हा ! रहते उस गाण्डीव के
हो मुझको ऐसी व्यथा !

(२१)

"जिस प्रकार है यहाँ मुझे कीचक ने घेरा,
होता जो वृत्तान्त विदित तुमको यह मेरा ।

नर होकर इन्द्रिय-गण-विवश
करते नाना पाप हैं ।
निज अहित-हेतु अविवेकि जन
होते अपने आप हैं ॥

(७)

"राजोचित सुख-भोग तुम्हीं को हों सुखदाता
कर्म्मों के अनुसार जीव जग में फल पाता ।
रानी ही यदि किया चाहता मुझे विधाता,
तो दासी-कुल-मध्य प्रथम ही क्यों प्रकटाता ।
है धर्म्म-सहित रहना भला
सेवक बन कर भी सदा ।
यदि मिले पाप से राज्य भी
त्यागनीय है सर्वदा ॥

(८)

"इस कारण हे वीर ! न तुम यों मुझे निहारो,
पाप-कर्म्म की ओर न अपना हाथ पसारो ।
निज माँ-बहिन समान सदा पर-दार विचारो,
होवे तव कल्याण, धर्म्म-पथ पर पद धारो ।
इस अपने अनुचित कर्म्म की
माँगो ईश्वर से क्षमा ।
है वह कृपालु कलि-कलुष-हर
करुणामय परमातमा" ॥

(९)

कृष्णा ने इस भाँति उसे बहु विधि समझाया,
किन्तु एक भी वचन न उसके हृदय समाया ।
मदमत्तों को यथायोग्य उपदेश सुनाना—
है ज्यों ऊसर-भूमि मध्य पानी बरसाना ।
हैं कर सकते जो जन नहीं
मनो-दमन अपना कभी ।
उनके समक्ष शिक्षा-कथन
निष्फल होता है सभी ॥

(१०)

"रहने दो यह ज्ञान, ध्यान, ग्रन्थों की बातें,
आती बारम्बार न यौवन की दिन-रातें ।
करिए जग में वही काम जो हो मनमाना;
क्या होगा मरणोपरान्त किसने है जाना ?
जो भावी की आशा किये
वर्त्तमान सुख छोड़ते ।
वे मानों अपने आप ही
निज हित से मुँह मोड़ते" ॥

(११)

कह कर ऐसे वचन वेग से बिना विचारे,
हो आतुर अत्यन्त काम-वश दशा-बिसारे ।
सहसा उसने पकड़ लिया कृष्णा के कर को,
मानो कर से मत्त नाग ने पङ्कज-वर को ॥
यह लख कीचक की नीचता
कृष्णा अति क्षोभित हुई ।
कर चख चञ्चलता से चकित
शम्पा-सम शोभित हुई ॥

(१२)

"अरे नराधम नीच ! लाज कुछ तुझे न आती;
निश्चय तेरी मृत्यु निकट आई दिखलाती" ।
कह कर यों, निज हाथ छुड़ाने को उस खल से,
तत्क्षण उसने दिया एक झटका अति बल से ॥
तब सहसा मुँह के बल वहाँ
मदोन्मत्त वह गिर पड़ा ।
ज्यों प्रबल वायु के वेग से
गिर पड़ता है तरु बड़ा ॥

(१३)

तब विराट की सभा मध्य निज विनय सुनाने,
उस पापी को कुटिल कर्म्म का दण्ड दिलाने ।
कच, कुच और नितम्ब-भार से खेदित होती,
गई किसी विधि शीघ्र द्रौपदी रोती रोती ।
उस अबला द्वारा भूमि पर
गिरने से क्रोधित महा ।
झट उसे पकड़ने के लिए
दौड़ा कीचक भी वहाँ ॥

अर्जुन और सुभद्रा।

गमनशील उस गज-गामिनि की राह रोक कर—भुज-पञ्जर में लिया पार्थ ने जब सहसा भर।
भय, लज्जा, सङ्कोच, प्रेम सात्विक समयोचित—हुए सुभद्रा-मुख पर नाना भाव सुशोभित॥

तो क्या दुर्जन, दुष्ट, दुराचारी यह कामी,
रहता जीवित कभी तुम्हारे कर से स्वामी !
तुम इस अधर्म्म-अन्याय को
देख नहीं सकते कभी।
हे वीर ! तुम्हारी नीति की
उपमा देते हैं सभी ॥

(२२)

"है अभाग्य ने दूर कर दिया तुमसे जिसको,
मुझे छोड़ कर और विपद होती यों किसको ?
है यह सब दुर्दैव-योग, इसका क्या कहना,
है कुछ अपने लिये न मेरा यहाँ उलहना।
पर जो मेरे सम्बन्ध से
होता तव अपमान है।
हे कृतलक्षण* ! केवल यही
चिन्ता मुझे महान है" ॥

(२३)

सुन कर वचन विचित्र याज्ञसेनी के ऐसे,
वैसी ही रह गई सभा चित्रित हो जैसे।
व्यग्र भाव से कथित गिरा उसकी विशुद्ध वर,
एक साथ ही गूँज गई उस समय वहाँ पर।
तब ज्यों त्यों कर के शीघ्र ही
अपने मन को रोक के।
यों धर्म्मराज कहने लगे
उसकी ओर विलोक के—॥

(२४)

"हे सैरिन्ध्री ! व्यग्र न होकर धीरज धारो;
नृप विराट प्रति वचन न यों निष्ठुर उच्चारो।
न्याय मिलेगा तुम्हें शीघ्र महलों में जाओ;
वृत्त विदित है जिन्हें न नृप को दोष लगाओ।
है शक्ति पाण्डवों की किसे
ज्ञात नहीं संसार में।
चलता परन्तु किसका कहो
वश विधि के व्यापार में" ?

*कृतलक्षण = गुणों से प्रसिद्ध।

(२५)

धर्म्मराज का मर्म्म समझ, हो नत-मुखवाली,
अन्तःपुर में चली गई तत्क्षण पाञ्चाली।
यथा-समय फिर दूर हुआ उसका दुख सारा,
भीमसेन ने महानीच कीचक को मारा।
हो चाहे कैसा ही प्रबल
यह अति निश्चित नीति है—।
है मारा जाता शीघ्र ही
करता जो अनरीति है ॥

३०—अर्जुन और सुभद्रा।

(१)

अर्जुन और सुभद्रा का यह चित्र मनोहर,
"सरस्वती" है आज प्रकाशित करती सुन्दर।
रविवर्म्मा का रुचिर-चित्र-चातुर्य-नमूना,
किसी अंश में नहीं जान पड़ता यह ऊना ॥

(२)

"जो हों जैसे दृश्य प्रकट जिस जिस प्रसङ्ग पर,
उन्हें दिखावे ज्यों के त्यों जो वही चित्रकर।"
है जो यह प्रख्यात चित्रकारों का लक्षण,
उसका है दृष्टान्त मित्र ! यह चित्र विलक्षण ॥

(३)

लिखनी चहिए बात जहाँ पर जो थी जैसी,
ठीक ठीक वह लिखी गई है देखो कैसी।
कोई मनोविकार छूटने यहाँ न पाया,
किस प्रकार से चित्रकार ने उन्हें दिखाया ॥

(४)

कई वर्ष तक नाना तीर्थों में विचरण कर,
गये द्वारका मुदित चित्त जब पार्थ वीर-वर।
वहाँ कृष्ण-भगवान-सङ्ग रैवतक शैल पर,
करने लगे विहार विविध विध नये निरन्तर ॥

लेती हूँ मैं सरुचि कर में लेखनी स्वस्थ ज्यों ही,
हो जाती है पुलकित सदा देह सम्पूर्ण त्यों ही ॥

(१६)

कान्ताओं को सहज रहती भूषणेच्छा महान ;
किन्तु स्वर्णादिक न गहना मानती मैं प्रधान ।
विद्या आदि प्रवर गुण ही हैं अलङ्कार-सार ;
होते सारे कनक-मणि के ये परिष्कार भार ॥

(१७)

शोभा ही है वह न जिसको हो अलङ्कार इष्ट;
भाता है जो स्वयमपि वही रूप होता वरिष्ट ।
पाते हैं क्या प्रकृत गुण को कृत्रिम श्रेष्ठता में ?
देखी जाती द्युति न विधु की दीप की चेष्टता में ॥

(१८)

है स्वामी को सुखित करना नारि-धर्म्म प्रधान ;
होते किन्तु प्रिय न वश में देख भूषा-विधान ।
चाहे जैसे रुचिर गहने हों न क्यों विद्यमान;
होते हैं वे सब गुण बिना व्यर्थ शोभायमान ॥

(१९)

"होता कोई मनुज जग में है नहीं दोष-हीन ;
देते हो क्यों फिर तुम मुझे दोष कोई कभी न ?"
स्वामी मेरे वचन सुन यों दोष देते यही हैं—
श्यामा ! दोष प्रकट तुझ में दूषणाभाव ही हैं ॥

(२०)

मानें जाते इस जगत में सौख्य जो श्रेष्ठ सार,
हैं सो सारे सतत मुझको प्राप्त सर्व प्रकार ।
पृथ्वी में है मुझ पर कृपा ईश की आज जैसी—
प्रार्थी हूँ मैं, सब पर करें नित्य विश्वेश वैसी ॥

३६—सीताजी का पृथ्वी-प्रवेश ।

(१)

सगर्भा सीता को तज कर प्रजा-रञ्जन-हित,
हुए अन्तर्यामी रघुपति महा-व्यग्र व्यथित ।
तथा सीता देवी प्रिय-विरह से दग्ध मन में
रहीं ज्यों त्यों जीती विधि-विहित वाल्मीकि-वन में ॥

(२)

वहीं जन्मे प्यारे लव-कुश यथाकाल उनसे ;
हुए वे दोनों ही निज जनक ज्यों रूप-गुण से ।
महा शोभा-शाली विदित उनसे सो तप-वन
दिखाता था मानों प्रकटित हुआ राज-भवन ॥

(३)

स्वपुत्रों के जैसा समझ मन से आदि-कवि ने
महा ब्रह्मज्ञानी तप-सदन ज्यों चंद-रवि ने ।
स्वयं शिक्षा दे के समुचित उन्हें प्रेम-सहित,
पढ़ाया पीछे से निज-रचित श्रीराम-चरित ॥

(४)

बड़ी श्रद्धा से वे विधि-युत उसे गान करके,
लगे श्रोताओं को चकित करने चित्त हरके ।
सुहाता है योंही सतत सबको गान हित हो,
कथा ही क्या है जो शुभ-चरित से संगठित हो ॥

(५)

किये वैदेही की कनक-प्रतिमा स्थापित, फिर ,
लगे रामस्वामी सविधि करने यज्ञ रुचिर ।
दिया था रानी को तज कुछ उन्होंने न मन से ,
किया था सम्बन्ध प्रकट नृप का लोक-जन से ॥

(६)

अतः आये थे जो मुदित मुनि के संग मख में;
लगे दो चन्द्रों से लव-कुश वहाँ लोक-चख में ।
प्रशंसा विज्ञों से श्रवण करके रूप-गुण की ,
परीक्षा लेने में तब रत हुए राम उनकी ॥
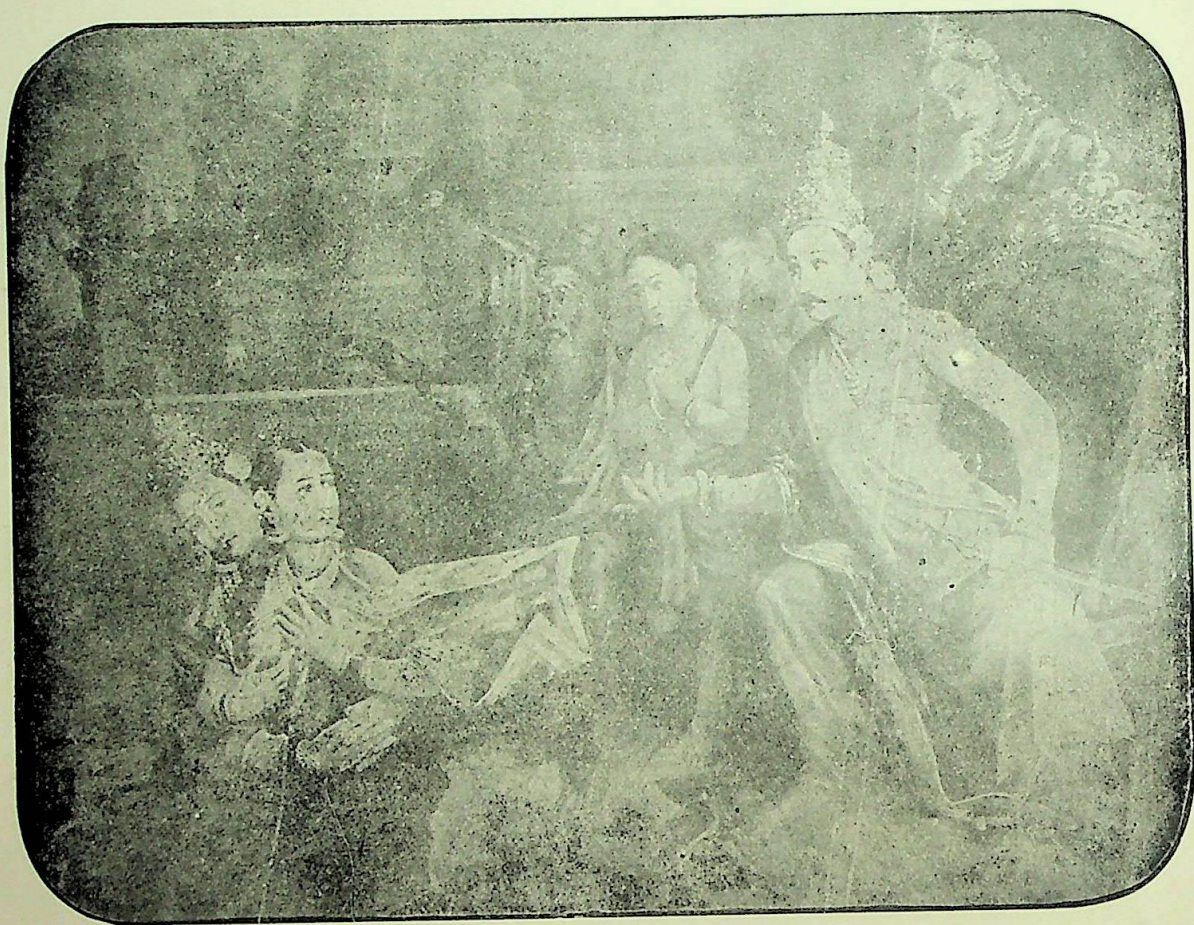
सीताजी का पृथिवी-प्रवेश।

ये अवनी-अङ्कस्थ, लगाये दृष्टि राम में—हैं प्रविष्ट हो रहीं जानकी धरा-धाम में।
सिंहासन से झुके हुए आगे को दुख से—"नहीं, नहीं" कह रहे राम हैं विस्मित मुख से॥

(२०)

पवित्राम्बु-द्वारा कर तब क्रिया आचमन की,
लगाये लोगों की निज विषय में वृत्ति मन की ।
उठाके थोड़ा सा वर-वदन वाणी कथन को,
कहे सीता ने यों सच वचन शङ्का-मथन को ॥

(२१)

"किसी सोते भी निज पति विना राघव कहीं,
किया हो जो मैंने निज हृदय में चिन्तन नहीं ।
हुआ हो जो मेरा व्रत न पति में खण्डित कभी,
करो पृथ्वी देवी ! ग्रहण मुझको तो तुम अभी ॥'

(२२)

सती सीता के यों कथन करते ही झट वहाँ,
हुआ पृथ्वी में से प्रकटित प्रभा-मण्डल महा ।
उसी में रक्खे थे सिर पर जिसे पन्नग-वर,
हुई पृथ्वी देवी प्रकट शुभ सिंहासन पर ॥

(२३)

अनेकों रत्नों के रुचिर गहने धारण किये,
पसारे बाँहों को निज शुचि सुता में दृग दिये ।
जगद्धात्री-गोत्रा विमल-वसना शान्त-वदना,
हुई क्या लोगों को उस समय आश्चर्यप्रद ना ?

(२४)

उठा के सीता को त्वरित फिर सो अङ्क-थल में,
क्षमारूपा क्षोणी प्रविशित हुई आत्म-तल में ।
गई सीता देवी प्रिय-विरह का दुःख सहते,
रहे राम स्वामी 'नहिँ नहिँ नहीं' शब्द कहते !

(२५)

महा मर्म-स्पर्शी इस समय की ही यह छवि,
इसे वाणी-द्वारा कर न सकते वर्णन कवि ।
घटी है ज्यों ऐसी प्रकट घटना अद्भुत यही,
छटा है वैसी ही अनुपम तथा सुन्दर सही ॥

३७—रामचन्द्रजी का गङ्गावतरण ।

(१)

दुराचारी पापी दशवदन का नाश करने,
त्रिलोकी की पीड़ा हरण कर भू-भार हरने ।
पिता की आज्ञा से तजकर धरा, धाम, धन को
गये सर्व-स्वामी मुदित जब श्रीराम बन को ।

(२)

स्वयं जाती है ज्यों अनुपद सदा कीर्ति गुण के,
चली पीछे पीछे जनकतनया देवि उनके ।
"जहाँ सीता राम प्रकटित अयोध्यापुर वहीं"—
गये यों अन्यत्र व्रतरत नहीं लक्ष्मण कहीं ॥

(३)

अनेकों दृश्यों के निरख पथ में कौतुक नये,
किनारे गङ्गा के पहुँच जब तीनों जन गये ।
मनोहारी शोभा लख त्रिपथगा की तब वहाँ,
हुए धर्माचारी मुदित मन में वे सब वहाँ ॥

(४)

तरङ्गों के मानों निज भुज पसारे प्रणय से,
लगाने जाती थी सुरसरि उन्हें यों हृदय से ।
तथा होती थी जो बहु जलचरों की कल-कथा,
उसी से थी मानों वह कर रही स्वागत-प्रथा ॥

(५)

मही में लेते ही मधुर जिनका नाम मुख से,
सभी हो जाते हैं भव-जलधि के पार सुख से ।
वही सीतास्वामी फिर सुरसरी-लङ्घन-हित,
स्वयं बोले वाणी तरणि-पति से प्रेम-सहित ॥

(६)

हुआ नौका-स्वामी पर सहज ही स्वीकृत नहीं ;
सुने था लोगों से चरित उनके सो सब कहीं ।
अतः बोला ऐसे वचन उनसे अद्भुत अति,
खड़ा होके आगे नत सिर झुका के वह कृती ॥

(७)

सभा में आये वे जिस समय आमन्त्रित हुए,
खुले नेत्रोंवाले सकल जन आश्चर्यित हुए।
मनोहारी दोनों, कर न सकते साम्य सुर थे,
किशोरावस्था की रघुवर-छटा के मुकुर थे॥

(८)

हुए नाना भाव स्फुरित उनको देख करके,
रहें तो भी राम प्रकृत मन में धैर्य धरके।
भले ही हो सिन्धु द्रवित विधु के अभ्युदय से,
कभी मर्यादा को न वह तजता है हृदय से॥

(९)

सुरीले कण्ठों के लघु वयस के किन्नर यथा,
लगे गाने दोनों जिस समय रामायण-कथा।
सभी के नेत्रों से जल बह चला प्रेम-मय यों,
खिले अम्भोजों से हिम सलिल प्रातः समय ज्यों॥

(१०)

अनिच्छा दोनों की लख फिर पुरस्कार-धन में,
हुआ जो सभ्यों को उन पर महाश्चर्य मन में।
हुआ विद्या से भी प्रकट उतना विस्मय नहीं,
बड़ाई पाती है प्रकृति गुण से भी सब कहीं॥

(११)

"सुधा से भी मीठी किस सुकवि की है यह कृति?
तुम्हारा गाने में गुरुवर तथा कौन सुकृती?"
स्वयं पूछे जाके हित-सहित यों राम मुख से,
बताया दोनों ने प्रथम-कवि का नाम सुख से॥

(१२)

सदा शुद्धाचारी भुवन-भयहारी रघुपति,
हुए भ्राताओं के सहित तब उत्कण्ठित अति।
तथा जाके शीघ्र श्रुत-सुकृत वाल्मीकि-निकट,
लगे देने सारा सविनय उन्हें राज्य प्रकट॥

(१३)

सती सीता के वे सुत युग उन्हीं के कह कर,
पुनः बोले होके सदय उनसे यों मुनिवर।
"विशुद्धा वैदेही तव भजन ही काम उसको;
करो अङ्गीकार प्रणय-युत हे राम! उसको"॥

(१४)

दशग्रीवाराति श्रवण कर प्यारे वचन यों,
हुए कारुण्यार्द्र द्रुत जल भरे नम्र घन ज्यों।
लगे देने पीछे सविनय उन्हें उत्तर यथा—
धरा में सो दृश्य प्रचुरतर आश्चर्यमय था॥

(१५)

"अमर्त्यों के आगे, मम निकट रत्नाकर-तट,
हुई वह्नि-द्वारा जनकतनया शुद्ध प्रकट।
न की तो भी श्रद्धा उस पर प्रजा ने हृदय से;
तजा है सो मैंने विवश उसको धर्म्म-भय से॥

(१६)

'दिखा के लोगों को सब विध विशुद्धात्मचरित,
करावे विश्वास प्रकट अब जो भक्ति-भरित।
तुम्हारी आज्ञा से उस सुतवती को सदन में
करूँ तो हे तात! ग्रहण फिर हो तुष्ट मन में"॥

(१७)

सुखी होके जी में सुखद हरि के यों कथन से,
बुलाया सीता को प्रथम-कवि ने पुण्य-वन से।
सभा में एकत्र प्रिय पुरजनों को तब कर,
हुए सीतानाथ स्थित विमल सिंहासन पर॥

(१८)

महातेजःपूर्णा रुचिकर रमा और रति से,
किये नीची ग्रीवा, गमन करती शान्त गति से।
तपों की अर्चा सी अरुण पट धारे, कृश महा,
गई जानी सीता 'प्रकृत शुचि' शोभामय वहाँ॥

(१९)

झुकाये लोगों ने समझ कर देवी सिर उसे,
सभा में दी आज्ञा प्रथम-कवि ने यों फिर उसे।
"त्रिलोकी में वत्से! अमल यश फैला कर अभी,
मिटा तू लोगों का निज विषय में संशय सभी॥"

सुकेशी अर्थात् मलाबार-सुन्दरी ।

केरल की यह नारी है सुकेशी नाम की सुकुमारी ।
छवि इसकी सुखकारी लगती किसको नहीं प्यारी ?

(७)

"तुम्हारे पैरों की रुचिर रज को स्पर्श करके,
शिला भी है नारी जब बन गई रूप धर के ।
कथा क्या नौका की अति मृदुल जो दारुमय है;
मुझे सो हे स्वामी अधिकतर सन्देह, भय है ॥

(८)

"अहल्या ज्यों नारी यह तरणि भी जो बन गई,
करूँगा तो क्या मैं प्रभुवर ! यही जीवनमयी ।
इसी से होता है विपुल कुल का पालन सदा;
रहूँगा मैं कैसे सह इस बिना घोर विपदा ॥

(९)

"अतः जाना है जो त्वरित परले पार तुम को,
धुलानी होगी तो पद-रज गुणागार ! तुमको ।
मुझे कारुण्याब्धे ! सरित-उतराई न चहिए;
पदों के धोने को बस रघुपते ! आप कहिए ॥

(१०)

"पखारूँगा सारी पद-रज तुम्हारी न जब लों,
उतारूँगा स्वामी-वर ! न तुमको पार तब लों ।
न मारें क्यों हो के कुपित मुझको लक्ष्मण यहीं;
लगाऊँगा नौका पद-कमल धोये बिन नहीं" ॥

(११)

वाणी केवट की विचित्र सुनके यों प्रेमपूरी, खरी,
सीता-लक्ष्मण ओर हेर विहँसे कारुण्यकारी हरी ।
देखो है यह दृश्य चित्रित वही अत्यन्त ही अद्भुत,
होगा नाविक और कौन तुझसा यों भाग्यशाली श्रुत ?

३८—सुकेशी ।

अथवा

मलाबार-सुन्दरी ।

(१)

पान बेली चन्दन सुपारी एला नारियल
केला के समेत जहाँ शोभा सरसाते हैं ।
हरे भरे काननों में बोलते हुए विहङ्ग
गान के समान चित्त नित्त ही लुभाते हैं ॥
चलती सुगन्धयुत मलय-समीर मन्द
विमल जलाशयों में जलज सुहाते हैं ।
देखो उसी केरल की कामिनी 'सुकेशी,' इसे—
चित्रकार राजा रविवर्मा दिखलाते हैं ॥

(२)

दामिनी समान दिव्य देह की छटा निहार
दर्शक जनों को चकाचौंध लग जाती है ।
भूलती है शोभा न कदापि यह, देख इसे
उर में नवीन एक जोति जग जाती है ॥
पड़ती है दृष्टि जिस अङ्ग पर एक बार
फिर भी उसी पर अवश्य ठग जाती है ।
चन्द्रमा को देखके चकोर के समान वह
भूल जग जाती और प्रेम पग जाती है ॥

(३)

लम्बित ललित लोल लोचन लुभावना त्यों
मन्द किया जिसने मिलिन्दों का प्रताप है ।
श्यामल सुचिक्कण सुगन्धशाली सुन्दर यों
लुप्त हुआ देख जिसे सर्प-दर्प आप है ॥
कोमल करों से पुष्प-माला-युक्त बाँधा हुआ
कैसा कमनीय यह केशों का कलाप है ।
उदित घटा है मानों घन की सघन काली
जिस पै निराली छटा देता इन्द्र-चाप है ॥

(४)

मीन के समान यदि लोचन बखानिये तो
भृकुटी अवश्य ही तरङ्ग के समान ये ।
किंवा यदि लोचन सरोजों से बखाने जायँ
भृकुटी बनी तो भृङ्गराजी छविमान ये ॥
भृकुटी और लोचनों में दृढ़ सम्बन्ध देखा
दोनों एक दूसरे के भूषण प्रधान ये ।
बाण के समान यदि लोचन ललाम हैं तो
भृकुटी कमान के समान रूपवान ये ॥

(५)

कैसे कहें बिम्बा के फलों में है सुधा का स्वाद
कैसे कहें पल्लवों में ऐसी सुघराई है ।

रामचन्द्रजी का गङ्गावतरण।

खड़े होकर विष्णुचरणी सुरसरी के तीर ; पार जाने को तरणि ये चाहते रघुवीर।
किन्तु नाविक मुनिवधू की गति कराकर याद ; रज बिना धोये उन्हें रखने न देता पाद॥

यद्यपि प्रबाल और पद्मराग लाल होते
किन्तु हमें उनकी कठोरता न भाई है ॥
विद्रुम-विनिन्दित ये अरुण स्वभाव ही से
तिस पै भी पान की यों छाई अरुणाई है ।
सारे उपमान खोज हारे कवि कोविद पै
ऐसे अधरों की कहीं उपमा न पाई है ॥

(६)

मानों करि-कुम्भों से, उरोजों से खिसका हुआ
वसन सँभालती जो सुन्दर स्वदेशी है ।
कञ्ज पै गुलाब मानों, कर पै कपोल दिये,
मोहती हुई जो चित्त सोहती सुवेशी है ॥
बैठी है स्वस्थ और शान्त भाव धारण किये
मानों आप शारदा ने शान्ति उपदेशी है ।
सूरत है भोली और बोली कोकिला सी मञ्जु
होली की शिखा सी खासी कामिनी सुकेशी है ॥

(७)

लोचन सुखद मानों मूर्तिमती सुन्दरता
जैसी यह सुन्दरी सुकेशी सुकुमारी है ।
वैसी ही प्रवीणा और सरला सुशीला तथा
विमल-चरित्रा निज प्रीतम की प्यारी है ॥
गृहिणी के योग्य श्रेष्ठ गुण इसमें हैं सभी
अपने सब कामों में दक्ष यह भारी है ।
सोने में सुगन्ध वाली बात जो सुनी थी कभी
वह सुखकारी इस नारी में निहारी है ॥

(८)

कञ्चन से कान्तिमान कञ्ज से कलेवर का
कैसा रमणीय रूप देखिए विचार के ।
अङ्ग अङ्ग सुन्दर सुडौल शुभ्र शोभित हैं
लोभित न होते कौन लोचन निहार के ॥
अद्भुत सुकेश-देश भव्य वेश-भूषण त्यों
चन्दनी दुकूल भाव मन के विकार के ।
बातें सभी चित्र में दिखाती हैं विचित्र मित्र !
कौशल अपार गुणागार चित्रकार के ॥

३६—गौरी ।

(१)

पर्वतपति-मेना की प्यारी,
है यह शैलसुता सुकुमारी ।
रूप अति रुचिर इसने पाया ;
विधि ने स्वयं इसे निर्म्माया ॥

(२)

हिमकर में जो सुन्दरता है ;
कमलों में जो कोमलता है ।
जहाँ जहाँ लावण्यता है ;
जिसमें जितनी गुण-गुरुता है ॥

(३)

जब एकत्र उन्हें कर पाया,
तब विधि ने अभ्यास बढ़ाया ।
फिर उसने यह रूप बनाया ;
सुन्दरता-समूह उपजाया ॥

(४)

हर को इसने वरना चाहा ;
मोहित उनको करना चाहा ।
बहुविध हाव-भाव कर हारी ;
विफल हुई पर इच्छा सारी ॥

(५)

शिव ने काम भस्म कर डाला ;
बहुत निराश हुई तब बाला ।
कठिन तपस्या तब विस्तारी ;
गौरी गौरी-शिखर सिधारी ॥

(६)

बरसों वहीं बिताया इसने ;
क्लेश कठोर उठाया इसने ।
तप से गात सुखाया इसने ;
मुनियों को शरमाया इसने ॥
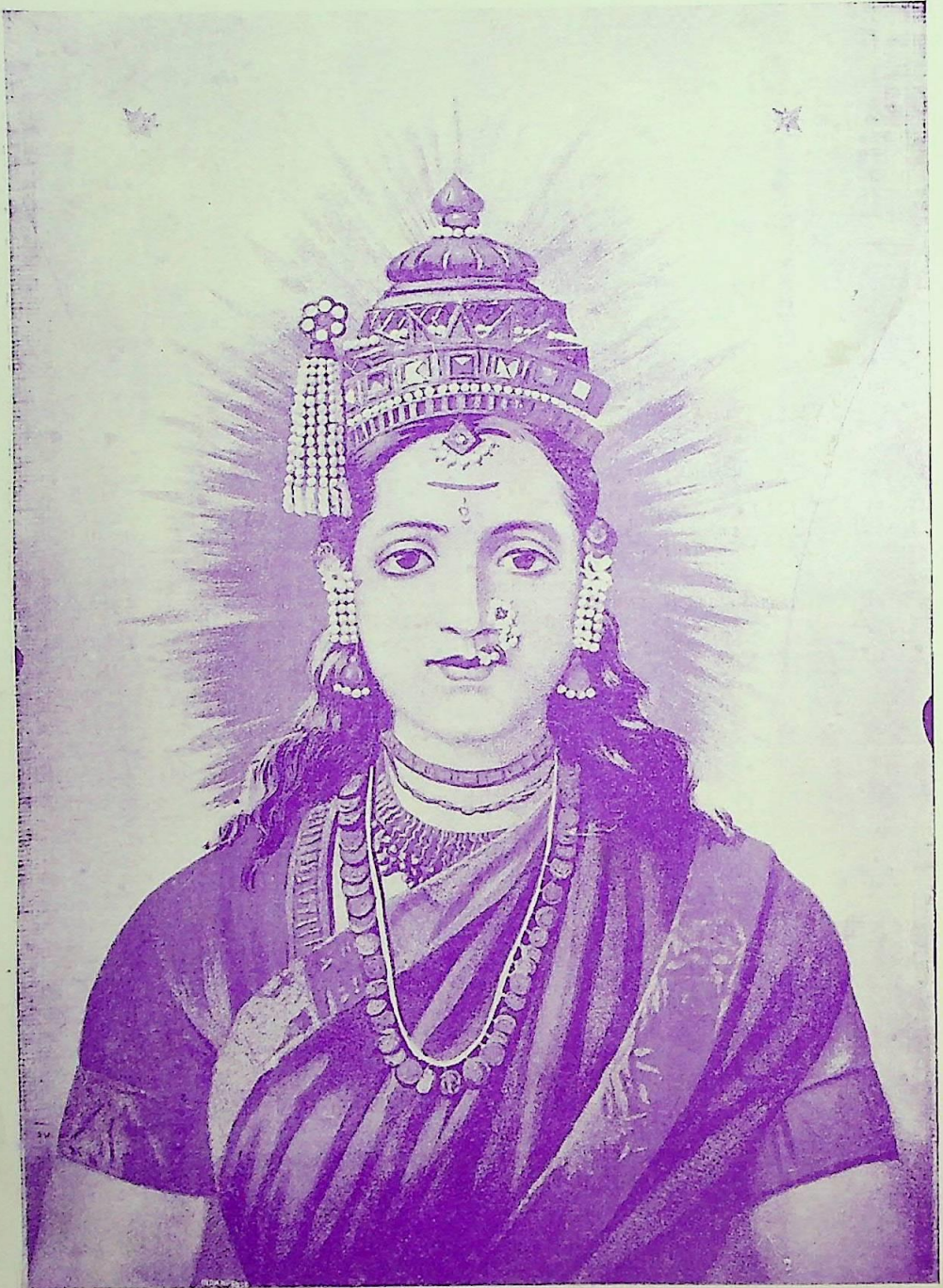
गौरी। (The great)

गङ्गा-भीष्म ।

(७)

इसकी देख तपस्या भारी,
हुए द्रवित कैलाशविहारी।
की तब सब इसकी मनभाई;
कुछ दिन में यह हर-घर आई॥

(८)

मृत्युञ्जय पति इसने पाया;
प्रेमपाश से बद्ध बनाया।
तन पति का आधा अपनाया;
अपना अति सौभाग्य बढ़ाया॥

(९)

तब से त्रिभुवन में विख्याता
गौरी हुई जगत की माता।
दिन दिन महिमा अधिकाती है;
घर घर में पूजी जाती है॥

(१०)

इसका चित्र मनोहारी है;
कौशल इसमें अति भारी है।
रविवर्म्मा की बलिहारी है;
जिसकी ऐसी कृतिकारी है॥

४०—गङ्गा-भीष्म।

(१)

पाठक, सुनिए कथा पुरानी;
थे मुनिवर वसिष्ठ विज्ञानी।
पास अष्ट वसु उनके आये;
उनसे गये मुनीश सताये॥

(२)

क्रोध उन्हें इससे हो आया;
वसुवों को यह शाप सुनाया।
"जन्म जगत् में लो तुम सारे;
वचन अन्यथा नहीं हमारे"॥

(३)

यह सुनकर वे सब घबराये;
कम्पित हुए; होश में आये।
भागीरथी-समीप सिधाये;
वचन विशेष विनीत सुनाये॥

(४)

"हे सुरसरि! विपत्ति के मारे;
आये हैं हम पास तुम्हारे।
जग में जननी बनो हमारी;
करो हमें निज कृपाधिकारी"॥

(५)

सुरसरि ने इनको स्वीकारा;
वसु-गण अपनी पुरी पधारा।
हुई जह्नुतनया तब नारी;
रूप-राशि अद्भुत विस्तारी॥

(६)

देखा नृप शान्तनु ने उसको;
मदन-विमर्दित-तनु ने उसको।
तब वह उस नरेश की रानी
हुई, बहुत उसके मनमानी॥

(७)

हुए सात उसके सुत सुन्दर;
वसुओं के अवतार मनोहर।
उनको उसने जल में डाला;
पहले किया हुआ प्रण पाला॥

(८)

जब देवव्रत अष्टम बालक
प्रकटा भीष्म-प्रतिज्ञा-पालक।
सुतस्नेह से नृप घबराया;
सुरसरि को बहुविध समझाया॥

(९)

युक्ति-युक्त सुन उसकी वाणी,
द्रवित हो गई गङ्गा रानी।

उसने वह सुत हाथ उठाया ;
इस प्रकार वर वचन सुनाया ॥

(१०)

"हे नृप मुझको सुरसरि जानो ;
बात सत्य यह मेरी मानो ।
कारण-वश जग में आई मैं;
यहाँ तुम्हारे मन भाई मैं ॥

(११)

"अब मैं अपने घर जाती हूँ ;
नहीं यहाँ रहने पाती हूँ ।
सुनो बात जो बतलाती हूँ ;
यह सुत तुम्हें दिये जाती हूँ ॥

(१२)

"वैरी इससे घबरावेंगे ;
पार नहीं इससे पावेंगे ।
यदि कोई सम्मुख आवेंगे ;
तत्क्षण ही मारे जावेंगे ॥

(१३)

ब्रह्मचर्य्य व्रत इसका होगा ;
यश न कभी मृत इसका होगा ।
पण्डित होगा ; सच कहती हूँ ;
अनुमति चलने की चहती हूँ ॥

(१४)

"जो कोई जग में है आता ;
सुख-दुख वह दोनों ही पाता ।
विधिही यह जोड़ा निर्म्माता ;
यह न किसी से तोड़ा जाता" ॥

(१५)

यह कह सुरसरि ने सुत दिया ;
सुरपुर का पथ उसने लिया ।
उसका चित्र विचित्र बना है ;
नृप रविवर्म्मा की रचना है ॥

४१—महाश्वेता ।

(१)

यह सुन्दरी कहाँ से आई ;
सुन्दरता अति अद्भुत पाई ।
सूरत इसकी अति भोली है ;
और न इसकी हमजोली है ॥

(२)

इसका चरित बाण ने गाया ;
जिसने कादम्बरी बनाया ।
यह कोमल किन्नर-कन्या है;
रूप-राशि गुण-गण-धन्या है ॥

(३)

हेमकूट पर्व्वत के ऊपर
उपवन एक चैत्ररथ सुन्दर ।
वहीं विमल अच्छोद सरोवर ;
उसके तट शिव-भवन मनोहर ॥

(४)

वहाँ एक दिन यह जाती थी ,
मग में निज छवि छिटकाती थी ।
युवा तपस्वी पुण्डरीक ने
(कुसुम-कली को चञ्चरीक ने)

(५)

देख इसे सब सुधि बुधि खोई ;
शुद्ध-शीलता सारी धोई ।
इसने भी अनुराग दिखाया ;
हार उसे अपना पहनाया ॥

(६)

लौट गेह निज जब यह आई ;
पीड़ा पुण्डरीक ने पाई ।
विरह-वह्नि ने उसे जलाया ;
इससे वह परलोक सिधाया ॥

महाश्वेता ।

Grand
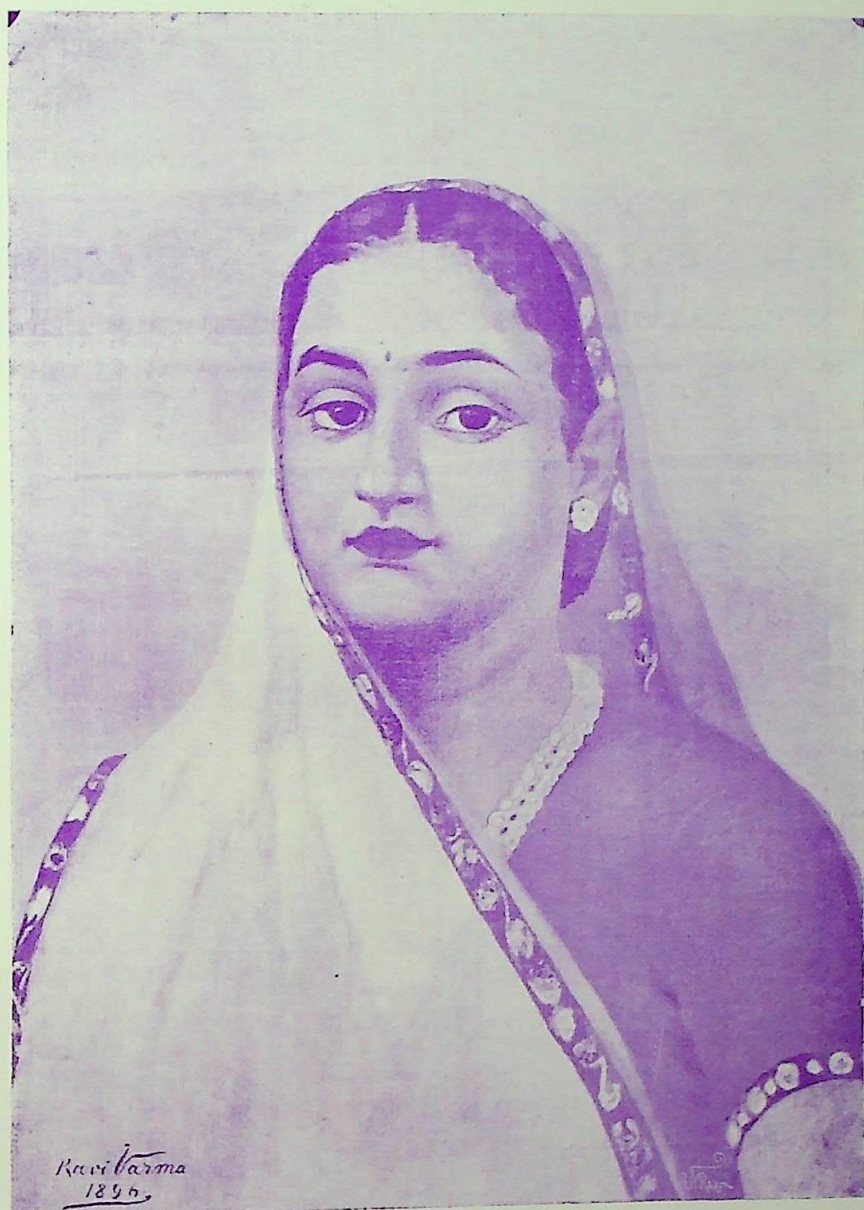
कुमुदसुन्दरी ।

(७)

इस विपत्ति से यह अकुलानी ;
हुई उसी क्षण से दीवानी ।
पिता और माता को छोड़ा ;
सब सम्बन्ध जगत से तोड़ा ॥

(८)

प्रिय से प्रेम लगाया इसने ;
अङ्ग विभूति रमाया इसने ।
जटा-जूट लटकाया इसने ;
मुनि-वर-वेश बनाया इसने ॥

(९)

पहनी पुण्डरीक की माला ;
आई उसी विपिन में बाला ।
पशुपति की पूजा आराधी ;
महा कठोर साधना साधी ॥

(१०)

कर वीणा ले नित्य बजाती ;
हर-गिरिजा को नित्य रिझाती ।
नित्य नये उनके गुण गाती ;
कन्द-मूल खाकर रह जाती ॥

(११)

वहाँ इसी विध यह सुकुमारी
करती रही तपस्या भारी ।
बहुत दिनों में इसका प्यारा
मिला इसे, खोया दुख सारा ॥

(१२)

उसे शशी ने शाप दिया था ;
चन्द्रलोक में खींच लिया था ।
अन्त उसी ने उसे पठाया ;
दोनों का सन्ताप मिटाया ॥

(१३)

चित्र महाश्वेता का सुन्दर
रविवर्म्मा ने विशद बनाकर ।
अतिशय कौशल दिखलाया है ;
भाव खूबही बतलाया है ॥

४२—कुमुदसुन्दरी ।

(१)

यह है कुमुदसुन्दरी बाला ;
है इसका सब ठाठ निराला ।
घर इसका गुजरात देश है ;
देखो कैसा सुभग वेश है ॥

(२)

चारु-चन्द्रमा-सम मुख-मण्डल ;
भूतल में शोभा-आखण्डल ।
कञ्चन-कर्णफूल पहने है ;
नहीं और कोई गहने हैं ॥

(३)

काम-कामिनी की ले छाया ;
जिसे चतुर्मुख ने निर्म्माया ।
भूषण उसकी विडम्बना है ;
महा-अनूपम रूप बना है ॥

(४)

इसके देख केश घुंघराले,
सुमन-सुवासित सुन्दर काले ।
नाग-नारियाँ छिप जाती हैं ;
मुँह न सामने दिखलाती हैं ॥

(५)

नयन नील-नीरज-छविहारी ;
श्रुति-पर्य्यन्त-पर्य्यटनकारी ।
इसके भृकुटी-भय का मारा
लोप शरासन है बेचारा ॥

(६)

इसके अधर देख जब पाते
शुष्क गुलाब फूल होजाते ।

अहल्या ।
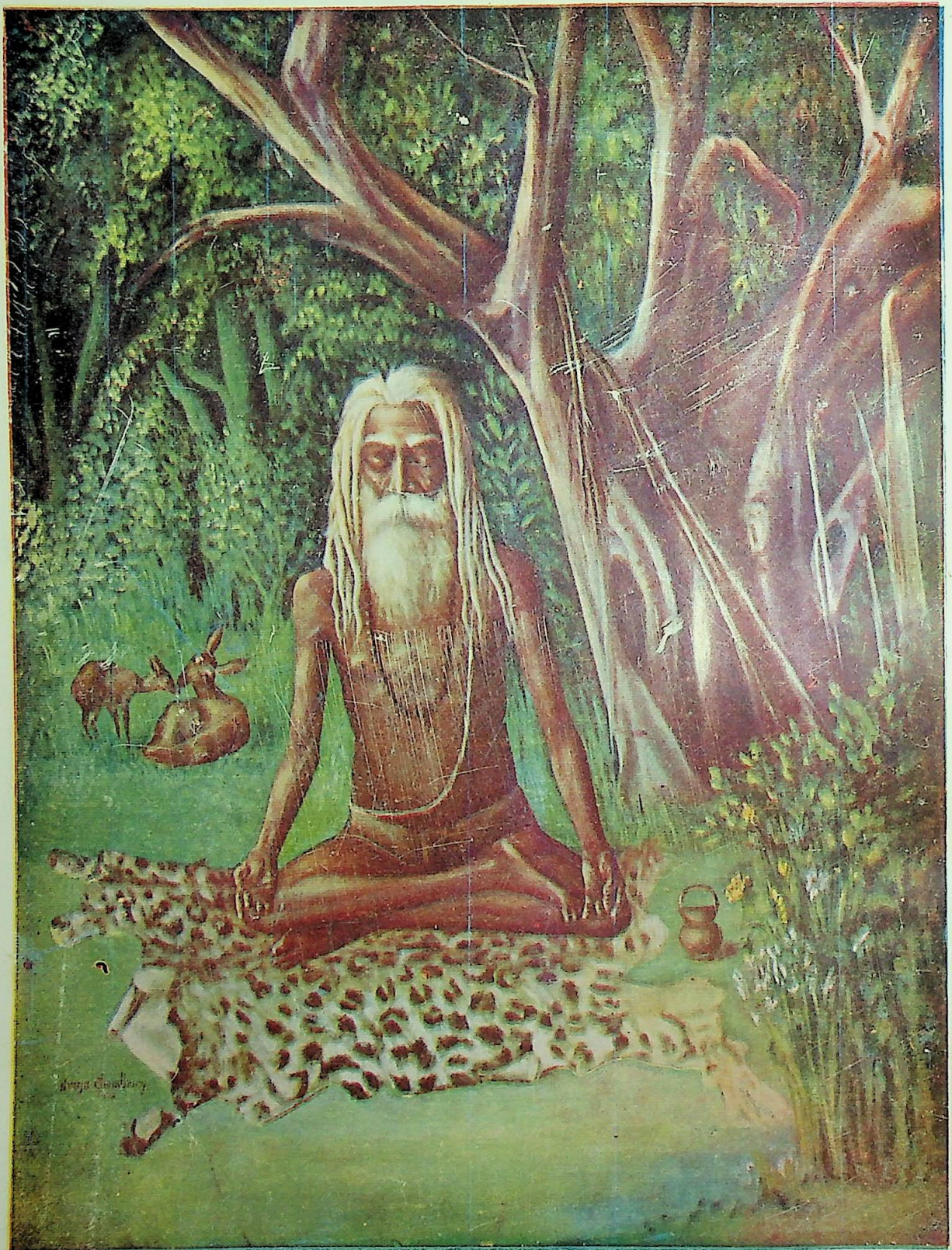
श्रीव्यासदेव ।

कोमल इसकी देह-लता है ;
मूर्तिमती यह सुन्दरता है ॥

(७)

बाहर सायङ्काल हमेशा
फिरती यह पति साथ हमेशा।
कड़े छड़े की चाह नहीं है ;
परदे की परवाह नहीं है ॥

(८)

पढ़ती भी, लिखती भी है यह,
घर सज्जित रखती भी है यह।
जब यह सूई हाथ उठाती
नये नये कौशल दिखलाती ॥

(९)

घर में सबको भाती है यह;
पति का चित्त चुराती है यह।
सखियों में जब जाती है यह;
मधु मीठा टपकाती है यह ॥

(१०)

यह शिक्षिता गुर्जरी नारी;
इसको प्रिय है नीली सारी।
इसकी छवि-लोचन-सुखकारी
रविवर्मा ने खूब उतारी।

४३—रम्भा।

(१)

रूपवती यह रम्भा नारी :
सुरपति तक को यह अति प्यारी।
रति, धृति भी, दोनों बेचारी
इसे देख मन में हैं हारी ॥

(२)

इसके हाव हृदयहारी हैं ;
हारी इससे सुरनारी हैं।
गति इसकी सबसे न्यारी है :
छवि नयनों को सुखकारी है ॥

(३)

जब यह अद्भुत भाव बताती,
बसन इधर से उधर हटाती ॥
नाभि-नवल-नीरज दिखलाती,
स्तनतट से पट को खिसकाती ॥

(४)

मुनि भी मोहित हो जाते हैं :
प्रचुर ताप तन में पाते हैं।
इसकी लीला कही न जाती :
गति इसकी न समझ में आती ॥

(५)

पहनी पारिजात की माला :
हरित वस्त्र सिर ऊपर डाला।
कर-पल्लव किस भाँति उछाला :
श्रुति-कुण्डल क्या खूब निकाला ॥

(६)

वेश विचित्र बनाया इसने;
मुख-मयङ्क दिखलाया इसने।
भृकुटी धनुषाकार मनोहर ;
अरुण दुकूल बहुत ही सुन्दर ॥

(७)

मञ्जु-मृणाल-पराजयकारी
वाम बाहु आभूषणधारी।
किस प्रकार लटकाया इसने :
कमलों को शरमाया इसने ॥

(८)

कटि इसकी न भङ्ग हो जावे ;
चलते कहीं न यह गिर जावे।
इससे त्रिबली-बन्ध बनाया :
विधि ने यह चातुर्य्य दिखाया ॥

रम्भा।

प्रियंवदा।

Bobbed hair.

(६)

इसका कुच-नितम्ब-विस्तार
सचमुच है अत्यन्त अपार ॥
दृष्टि युवकजन की जो जाती ,
थक कर वहीं पड़ी रह जाती ॥

(१०)

शुक के सम्मुख जानेवाली ;
सरस भाव बतलानेवाली ।
नव-यौवन-मद से मतवाली ;
सुर-नर-मुनि-मन हरनेवाली ॥

(११)

इसका चित्र सभी को भाया ;
रविवर्मा ने विशद बनाया ।
कौशल उसमें खूब दिखाया ;
रुचिर रूप अच्छा उपजाया ॥

४४–प्रियंवदा ।

(१)

यह है प्रियंवदा पति-प्यारी ,
कुलकामिनी पारसी-नारी ।
इसकी रुचिर रेशमी सारी
तन की द्युति दूनी विस्तारी ॥

(२)

नित सरितापति-तट को जाती ;
नित आमोद प्रमोद मचाती ।
नित यह गीत मनोहर गाती ;
कलकण्ठों को खूब लजाती ॥

(३)

मधुर "पियानो" नित्य बजाती ;
जौहर नये नये दिखलाती ।
"गौहर" का गुरूर गिर जावे ;
यदि इसका गाना सुन पावे ॥

(४)

परदे का कुछ काम नहीं है ;
कहीं सकुच का नाम नहीं है ।
चम्पकवर्णी, श्याम नहीं है ;
इसमें ज़रा कलाम नहीं है ॥

(५)

सीखा चित्र बनाना इसने ;
करके कौशल नाना इसने ।
पढ़ना और पढ़ाना इसने ;
पति का चित्त चुराना इसने ॥

(६)

पुरुषों में भी जाना इसने
मन्द मन्द मुसकाना इसने ।
सुधा-सलिल बरसाना इसने ;
ज़रा नहीं शरमाना इसने ॥

(७)

इसके कुण्डल श्रुति-सुख-कारी ;
देख अनस्थिरता-रत भारी ।
चित्त हुआ उनका अनुयायी ;
चञ्चलता की पदवी पाई ॥

(८)

कच-कलाप बिखराये कैसे ?
सम्मुख सुघर बनाये कैसे ?
दर्शक-दृग यदि उन पर जाते ,
फिर वे नहीं लौटने पाते ॥

(९)

सरस्वती से जो वर पावे,
इस पर कविता वही बनावे ।
इससे श्रम क्यों वृथा उठावें ?
क्यों न यहीं अब हम रुक जावें ?

(१०)

अङ्ग अङ्ग सुन्दरताशाली ;
सूरत क्या ही भोली भाली ।

नहीं और इसकी हमजोली ;
रूप-राशि की हद बस हो ली ॥

(११)

जिसने इसका चित्र बनाया ,
मनोमुग्धकर भाव दिखाया।
नृप रविवर्म्मा सबके प्यारे ,
हाय हाय ! सो स्वर्ग सिधारे ॥

४५–ऊषा-स्वप्न ।

(१)

बाणासुर की सुता सयानी ;
रति भी जिसको देख लजानी ।
रुचिर नाम ऊषा उसका है
विशद-वेश-भूषा उसका है ॥

(२)

जब वह हुई षोडशी बाला ;
पड़ा काम से उसका पाला।
मन्मथ ने शायक सन्धाना ;
ऊषा उसका हुई निशाना ॥

(३)

दुर्निवार मनसिज की मारी
व्यथित हुई जब वह सुकुमारी।
उससे और न लड़ना चाहा ;
पति का पाणि पकड़ना चाहा ॥

(४)

बिम्बाधर-रस चखनेवाला,
तनु में जीवन रखनेवाला ।
जल्द नहीं जो पाऊँगी मैं ;
हे महेश, मर जाऊँगी मैं ॥

(५)

यों कहकर घबराने तब वह—
लगी गिरीश मनाने तब वह ॥
दुःख अत्यधिक पाने तब वह :
तनु को कृशित बनाने तब वह ॥

(६)

बहुत रात खोने पर उसको
एक बार सोने पर उसको ।
हुआ स्वप्न सुखदायक उसको
मिला एक नव-नायक उसको ॥

(७)

यदुवंशी अनिरुद्ध कुमार,
रूप-राशि शोभा-आगार ।
पास स्वप्न में उसके आया ;
जी से वह ऊषा को भाया ॥

(८)

सुन्दरता भी शरमा जावे,
यदि वह उसके सम्मुख आवे।
वदन नील-नीरद सम काला ;
अति विशाल गल-मुक्ता-माला ॥

(९)

उसे देख मन बहुत सँभाला :
तदपि हो गई मोहित बाला।
यदपि न मुँह से वचन निकाला :
दिल अपना उसने दे डाला ॥

(१०)

ऊषा को जब ऐसा पाया,
युवा पास उसके तब आया।
बैठ गया, मन-मोद बढ़ाया,
विधु-वदनी का हाथ उठाया ॥

(११)

रस इस तरह बढ़ाया उसने ;
मनोमुकुल विकसाया उसने।
सुधा-सलिल बरसाया उसने :
तनु कण्टकित बनाया उसने ॥

ऊषा-स्वप्न ।

कुन्ती कर्ण

कर्ण-जन्म की कथा कथन कर यह समक्ष में—करती कुन्ती विनय उसे करने स्वपक्ष में।
किन्तु मानता नहीं बात उनकी वह मानी—दुर्योधन की ओर युद्ध की उसने ठानी॥

श्रीव्रजभूषणराय चौधरी-अङ्कित]

(१२)

कि वह भूल अपने को गई ;
सत्य समझ सपने को गई।
कर-स्पर्श-सुख-सिन्धु समानी ;
रतिपति के वह हाथ बिकानी॥

(१३)

उसके मुख-मयङ्क की शोभा ;
देख युवा का भी मन लोभा।
सुषमा-सर उसने अवगाहा ;
अरुणाधर-रस चखना चाहा॥

(१४)

ऊषा ने भी की मन-भाई ;
उत्सुकता अतिशय दिखलाई।
पर ज्योंहीं वह भुजा उठाने
चली, युवा को गले लगाने॥

(१५)

नींद दृगों से त्योंही भागी ;
कहीं नहीं कुछ ; जब वह जागी।
इससे जो दुख उसने पाया ;
गया पुराणों में है गाया॥

(१६)

चित्रकार-वर रविवर्म्मा है ;
निज गुण में अनन्यकर्म्मा है।
उसने ऊषा-स्वप्न उतारा ;
खूब सुयश अपना विस्तारा॥

४६—कुन्ती और कर्ण।

जब दुर्योधन किये बिना संग्राम सरासर,
देने लगा न भूमि सुई की नोक बराबर।
जब न एक भी बात सन्धि की उसने मानी,
तब विग्रह को विवश हुए पाण्डव विज्ञानी॥

(२)

सुनकर यह सब हाल युद्ध होना निश्चित कर,
कुन्ती कर्ण-समीप गई गङ्गा के तट पर।
था उसका उद्देश कर्ण को समझाने का,
तथा मना कर आत्म-पक्ष में कर लाने का॥

(३)

वहाँ कर्ण आकण्ठ-मग्न सुरसरी-नीर में,
कर युग ऊँचे किये लग्न था तप गभीर में।
जप से हुआ निवृत्त न वह बल-गर्वित जौ लों,
राह देखती रही खड़ी उसकी यह तौ लों

(४)

किये चित्त एकाग्र सूर्य्य में दृष्टि लगाये,
अस्फुट स्वर से वेद-मन्त्र पढ़ता मन भाये।
सलिल मग्न आकण्ठ सुहाता था वह ऐसे,
अलि-कुल-कलकल-कलित कमल फूला हो जैसे॥

(५)

गङ्गा-गर्भ-प्रविष्ट सूर्य्य-सुत शोभाशाली,
दिखलाता था छटा एक वह नई निराली।
सूर्य्योन्मुख था दृश्य अचल यों मुख-मण्डल का—
जल में ज्यों प्रतिबिम्ब सूर्य्य का ही हो झलका॥

(६)

करके पूरा ध्यान देख कुन्ती को आगे,
बोला वह यों वचन विनयपूर्वक अनुरागे।
"अधिरथ-सुत यह कर्ण तुम्हें करता प्रणाम है ;
हो आर्य्ये! आदेश, कौन मम योग्य काम है?"

(७)

देकर तब आशीष उसे समुचित हितकारी,
बोली कुन्ती गिरा प्रकट उससे यों प्यारी।
"बढ़े तुम्हारी कीर्ति वत्स! नित भूमण्डल में ;
आखण्डल* सम कहें सकल जन तुमको बल में॥

(८)

"अधिरथ-सुत की बात वदन से तुम न बखानो,
शुद्ध सूर्य्य-सुत श्रेष्ठ सदा अपने को जानो।

---

* इन्द्र।

(५)

वहाँ एक दिन एक दूसरे को निहार कर,
अर्जुन और सुभद्रा मोहित हुए परस्पर।
होते कैसे नहीं रूप गुण में वे सम थे,
किसी बात में नहीं किसी से कोई कम थे ॥

(६)

राम-कृष्ण की बहिन सुभद्रा अति प्यारी थी,
रूपवती गुणवती रती-सम सुकुमारी थी।
थी जैसी उस विधु-वदनी की अद्भुत सुखमा,
हार गये कवि खोज खोज पर मिली न उपमा ॥

(७)

जान गये भगवान प्रेम दोनों का मन में,
अन्तर्यामी से क्या छिप सकता त्रिभुवन में ?
थी अथवा उनकी ही यह इच्छा सुखकारी,
वही जान सकते हैं अपने भेद मुरारी ॥

(८)

तदनन्तर अर्जुन ने श्रीहरि की सम्मति से,
बिठला कर उनके ही रथ में अतिद्रुतगति से।
किया सुभद्रा-हरण मार्ग से ही बलपूर्वक,
उसी समय का चारु चित्र यह है सुखदायक ॥

(९)

गमनशील उस गजगामिनि की राह रोक कर,
भुज-पञ्जर में लिया पार्थ ने जब सहसा भर।
भय, लज्जा, सङ्कोच, प्रेम, सात्विक समयोचित,
हुए सुभद्रा-मुख पर नाना भाव सुशोभित ॥

(१०)

नगर ओर उस समय सुभद्रा घर जाती थी,
देव-विप्र-रैवतक पूज कर वह आती थी।
मन्द चाल से वह मराल को सकुचाती थी,
बार बार कच-भार लङ्क लच लच जाती थी ॥

(११)

हलधर ने सब हाल किन्तु जब यह सुन पाया,
विद्युद् वेग समान रोष सत्वर हो आया।
मदिरारुण-दृग हुए और भी अतिअरुणारे,
जवा-पुष्प पत्रों में मानों प्रकट निहारे ॥

(१२)

सुधि बुधि जाती रही कोप के कारण सारी,
अर्जुन-वध के लिए हुए वे व्याकुल भारी।
दुर्योधन के साथ सुभद्रा ब्याह प्रीति से,
थे करना चाहते शीघ्र वे यथारीति से ॥

(१३)

देख हाल यह वासुदेव ने उन्हें मनाया,
सब प्रकार से उन्हें विनय-पूर्वक समझाया।
फिर अर्जुन को प्रेम-सहित हरि ने लौटाया,
विधिपूर्वक कर दिया ब्याह उनका मनभाया ॥

(१४)

करने लगी विलास मोद से फिर वह जोड़ी
विविध भाँति सुख-भोग प्रीति-रस-रीति निचोड़ी।
महावीर अभिमन्यु पुत्र उसने उपजाया,
महारथी वीरों का जिसने गर्व गिराया ॥

३१—दमयन्ती और हंस।

(१)

प्रियवर ! यह देखो मञ्जुलालोक-माला,
अनुपम दमयन्ती भीम-भूपाल-बाला।
नल-विषयक बातें छोड़ के काम सारे,
श्रवण कर रही है हंस से ध्यान धारे ॥

(२)

वह अपर खगों सा है न सामान्य हंस;
विदित यह वही है ब्रह्म-यान-प्रशंस।
नल पर करता है प्रेम अत्यन्त जी से;
प्रणय-वश यहाँ है आज आया इसी से ॥

(३)

प्रकट मनुज-वाणी बोलता कीर जैसे
नल-गुण वह भी है गा रहा ठीक वैसे।
सहज सरस होती हंस-वाणी प्रतीत
तिस पर सुखकारी है महत्कीर्त्ति-गीत ॥

दमयन्ती और हंस ।

सुन्दरता की खान, यह दमयन्ती देखिए।
निषध-नृपति-गुण-गान, दिव्य हंस से सुन रही ॥

रण-निमन्त्रण।

(४)

प्रिय-गुण सुनने में चित्र सी ध्यानलग्ना
किसी विध दमयन्ती हो रही प्रेममग्ना ।
सुकवि इस दशा में जान पाते यही हैं—
श्रुति-गत सब मानों इन्द्रियाँ हो रही हैं ॥

(५)

इस मुकुरमुखी से हंस ने जो कहा है
वह सुन इसका जी मुग्ध सा हो रहा है ।
निज शुभ सुनने में कौन होता विरक्त ?
प्रिय-ललित-कथा का कौन श्रोता न भक्त ?

(६)

"सचमुच दमयन्ती ! तू मही-मध्य धन्य
जिस पर नल की है प्रीति ऐसी अनन्य ।
निषध-नृपति भी त्यों सर्वथा भाग्यवान
विकल जिस बिना तू हो रही यों महान ॥

(७)

गुण-गण तुझ में जो दिव्य दुष्प्राप्य सारे
नृप-वर नल में भी सो सभी हैं निहारे ।
रति-मनसिज की सी लोचनानन्दकारी
सकुशल चिर जीवे योग्य जोड़ी तुम्हारी ॥

(८)

व्यथित उस बिना ज्यों हो रही तू मलीन
तुझ बिन वह भी त्यों हो रहा क्षीण दीन ।
विरह-दुख न देता एक ही ओर दैव;
प्रकट प्रणय दोनों ओर होता सदैव ॥

(९)

वह नृपति यथा है रूप में दर्शनीय;
सकल शुभ गुणों में है तथा अद्वितीय ।
सदयहृदय, न्यायी, साहसी, शूर, शुद्ध,
रथ-पथ उसका त्यों है कहीं भी न रुद्ध ॥

(१०)

सतत हृदयहारी रूप में अन्य काम,
विधु-सम छवि में है नित्य नेत्राभिराम ।
सुरप-विभव में त्यों तेज में भानु जैसा,
नल नृप बल में है आप ही आप ऐसा ॥

(११)

इस विपुल धरा में हैं अनेकों महीप;
पर नल-सम कोई है न लोक-प्रदीप ।
उदित बहुत होते व्योम में नित्य तारा;
पर तम हरता है सोम ही एक सारा ॥

(१२)

मिल कर रहती हैं शारदा-श्री न सङ्ग,
प्रकटित उनका है सर्वदा प्रीति-भङ्ग ।
पर नल-सुकृतों से तुष्ट हो, मोद मान,
उस पर रखतीं वे प्रेम दोनों समान ॥

(१३)

वह मुख सुखकारी, दिव्य ऊँचा ललाट,
सुगठित वह नासा, पीन वक्षः कपाट ।
वह दृग युग युग तारा, बाहु आजानुलम्ब,
नल-सम न कहीं है, रूप-शोभावलम्ब ॥

(१४)

नल-नृप-छवि जाती चित्र से भी न जानी;
फिर सुन कर कैसे जा सके पूर्ण मानी ?
समुचित उसको तू जानती है न खेद;
अवनि-गगन सा है श्रोत्र-दृष्टि-प्रभेद" ॥

(१५)

अतिशय सुकुमारी, सुन्दरी, दिव्यदेही,
नल पर दमयन्ती मुग्ध थी पूर्व से ही ।
कर अब उसकी यों और भी प्रेम-वृद्धि,
इस द्विज-वर ने की शीघ्र ही कार्य्य-सिद्धि ॥

३७—रण-निमन्त्रण ।

(१)

कौरव तथा पाण्डव परस्पर विजय की आशा किये
होने लगे जब प्रकट प्रस्तुत युद्ध करने के लिये ।
उस समय निज निज पक्ष के राजा बुलाने को वहाँ
भेजे गये दोनों तरफ़ से दक्ष दूत जहाँ तहाँ ॥

(२)

फिर शीघ्र ही श्रीकृष्ण को निज ओर करने युद्ध में
देने उन्हें रण का निमन्त्रण निज-विपक्ष-विरुद्ध में।
लेने तथा साहाय्य उनसे और सर्व प्रकार का
दैवात् सुयोधन और अर्जुन सङ्ग पहुँचे द्वारका ॥

(३)

उस समय सुन्दर सेज ऊपर सो रहे भगवान थे
गम्भीर, नीरव, शान्त, सुस्थिर, सिन्धु-सम छविमान थे।
ओढ़े मनोहर पीत पट अति भव्य रूपनिधान थे
प्रत्यूष-आतप-सहित शुचि यमुना-सलिल-उपमान थे ॥

(४)

मुकुलित विलोचन युग्म उनके इस प्रकार ललाम थे
भीतर मधुप मूँदे हुए ज्यों सुप्त सरसिज श्याम थे।
कच-निचय मुखमण्डल सहित यों सोहते अभिराम थे
घेरे हुए ज्यों सूर्य्य को घन सघन शोभा-धाम थे ॥

(५)

नीलारविन्द समान तनु की अति मनोहर कान्ति से
शुचि हार-मुक्ता दीखते थे नीलमणि ज्यों भ्रान्ति से।
थे चिह्न कन्धों में विविध यों कुण्डलों के सोहते
मन्मथ-लिखित मानों वशीकर मन्त्र थे मन-मोहते ॥

(६)

निःश्वास नैसर्गिक सुरभि यों फैल उनकी थी रही
ज्यों सुकृत-कीर्त्ति गुणी जनों की फैलती है लहलही।
सुकपोल करतल पर ललित यों दर्शनीय विशेष था
मृदु-नवल-पल्लव-सेज पर ज्यों पड़ा नक्षत्रेश था ॥

(७)

शय्या-वसन-सङ्घर्ष से जो हो रहे अति क्षीण थे
उन अङ्गरागों से रुचिर यों अङ्ग उनके पीन थे।
ज्यों शरद ऋतु में धवल घन के विरल खण्डों से सदा
होती सुनिर्मल नील नभ की छवि-छटा मोदप्रदा ॥

(८)

था शयन-पाटाम्बर अरुण, झालर लगी जिसमें हरी
उस पर तनिक तिरछे पड़े थे पीतपट ओढ़े हरी।
वह दिव्य शोभा देख करके ज्ञात होता था यही
मानों पुरन्दर-चाप सुन्दर कर रहा शोभित मही ॥

(९)

ऐसे समय में शीघ्रता से पहुँच दुर्योधन वहाँ
श्रीकृष्ण के सिर ओर बैठा रुचिर आसन था जहाँ।
कुछ देर पीछे फिर वहाँ आकर बिना ही कुछ कहे
हरि के पदों की ओर अर्जुन नम्रता से स्थित रहे ॥

(१०)

उस काल उन दोनों सहित शोभित हुए अति विष्णु यों
कन्दर्प और वसन्त-सेवित सो रहे हों जिष्णु* ज्यों।
फिर एक दूजे को परस्पर तुच्छ मन में लेखते
हरि जागरण की राह दोनों रहे ज्यों त्यों देखते ॥

(११)

उस समय दोनों के हृदय में भाव बहु उठने लगे
पर कह सके कुछ भी न वे जब तक न पुरुषोत्तम जगे।
दो ओर से आते हुए युग जल-प्रवाह बहे बहे
मानों मनोरम शैल से हों बीचही में रुक रहे ॥

(१२)

कुछ देर में जब भक्तवत्सल देवकीनन्दन जगे
तब देख अर्जुन को प्रथम बोले वचन प्रियता-पगे।
"है कुशल तो सब भाँति भारत! कहो आये हो कहाँ ?
हो कार्य्य मेरे योग्य जो प्रस्तुत सदा मैं हूँ यहाँ" ॥

(१३)

कहते हुए यों सेज पर निज पूर्व-तनु के भाग से
पर्यङ्क-तकिये के सहारे बैठ कर अनुराग से।
सब जान कर भी पार्थ को निज वचन कहने के लिए
दृग-कमल उनकी ओर हरि ने मुदित हो प्रेरित किये ॥

(१४)

तब देख उनकी ओर हँस कर कुछ विचित्र विनोद से
निज सिर झुकाते हुए उनको नम्र होकर मोद से।
करते हुए कुरुनाथ का मुख-तेज निष्प्रभ सा तथा
यों कह सुनाई पार्थ ने संक्षेप में अपनी कथा— ॥

* जिष्णु = इन्द्र।

द्रौपदी-हरण।

देखो, अहो ! यह जयद्रथ सिन्धुराज ; हो मुग्ध, आज तज के सब लोक-लाज।
यों द्रौपदी-हरण है करता सगर्व ; हैं वीर पाण्डव गये मृगयार्थ सर्व॥

(१५)

"होते सुलभ सुख-भोग जिससे भागते भव-रोग हैं
सो कृपा जिन पर आपकी सकुशल सदा हम लोग हैं ।
सम्प्रति समर-साहाय्य-हित, कर विनय, सुख पाकर महा
मैं हुआ देने 'रण-निमन्त्रण' प्राप्त सेवा में यहाँ" ॥

(१६)

कर्त्तव्य ही कुरुनाथ अपना सोचता जब तक रहा
कर लिया तब तक पार्थ ने यों कार्य्य निज ऊपर कहा ।
यह शीघ्र घटना देख कर अति चकित सा वह रह गया
सब गर्व उसका उस समय नैराश्य-नद में बह गया ॥

(१७)

धिक्कार तब देता हुआ वह प्रथम आने के लिये
मन के विकारों को किसी विध रोक कर अपने हिये ।
श्रीकृष्ण से मिल कर तथा पा कर उचित सत्कार को
कहने लगा इस भाँति उनसे त्याग सोच विचार को ॥

(१८)

"आया प्रथम गोविन्द ! हूँ मैं आपके शुभ-धाम में
अतएव मुझको दीजिए साहाय्य इस संग्राम में ।
मैं और अर्जुन आपको दोनों सदैव समान हैं
पै प्रथम आये को अधिकतर मानते मतिमान हैं" ॥

(१९)

श्रीकृष्ण बोले—"कहे तुमने उचित वचन विवेक से
तुम और पाण्डव हैं हमें दोनों सदा ही एक से ।
तव प्रथम आने के वचन भी सब प्रकार यथार्थ हैं
पर हुए दृग्गोचर प्रथम मुझको यहाँ पर पार्थ हैं ॥

(२०)

"जो हो, करूँगा युद्ध में साहाय्य दोनों ओर मैं
पालन करूँगा यह किसी विध आत्मकर्म्म कठोर मैं ।
दश कोटि निज सेना करूँगा एक ओर सशस्त्र मैं
केवल अकेला ही रहूँगा एक ओर निरस्त्र मैं ॥

(२१)

"दो भाग निज साहाय्य के इस भाँति हैं मैंने किये
स्वीकार तुम दोनों करो, हो जो जिसे रुचिकर हिये ।
रण-खेत में निज ओर से सेना लड़ेगी सब कहीं ॥
पर युद्ध की है बात क्या, मैं शस्त्र भी लूँगा नहीं" ॥

(२२)

सुनकर वचन यों पार्थ ने स्वीकार श्रीहरि को किया
कुरुनाथ ने नारायणी दश कोटि सेना को लिया ।
तब पार्थ से हँसकर वचन कहने लगे भगवान यों—
"स्वीकृत मुझे तुमने किया है त्याग सैन्य महान क्यों ?"

(२३)

गम्भीर होकर पार्थ ने तब यह उचित उत्तर दिया—
"था चाहिए करना मुझे जो, है वही मैंने किया ।
है सैन्य क्या, मुझको जगत भी तुम बिना स्वीकृत नहीं
श्रीकृष्ण रहते हैं जहाँ सब सिद्धियाँ रहतीं वहीं" ॥

३३—द्रौपदी-हरण ।

(१)

सज्जित हो अनुकूल वेश से अस्त्र शस्त्र सब धारे
एक बार वन-वासी पाण्डव थे मृगयार्थ सिधारे ॥
उसी समय उनके आश्रम में सिन्धु देश का स्वामी
आकर कृष्णा से यों बोला नृपति जयद्रथ कामी ॥

(२)

"हे प्रासाद-निवासिनि, भामिनि, कृशोदरी, सुकुमारी,
"कुश-विकीर्ण इस कानन में क्यों सहती हो दुख भारी ?
"अगणित-कमल-अमल-जल-पूरित मानस से हो न्यारी
"रह सकती क्यों मरुस्थली में राजहंसिनी प्यारी ?

(३)

"दुर्लभ भोग-योग्य यौवन की तरुणावस्था ही में
"सुमन-सेज के योग्य देख यों तुमको विपिन-मही में ।
"किस पाषाण-हृदय में तत्क्षण करुणा उदित न होगी ?
"अहो ! देवि, यह मूर्त्ति तुम्हारी क्या फिर मुदित न होगी।

(४)

"चूड़ामणि-विहीन, रूखे से, रहे न जो घुँघराले,
"क्षीण-वीर्य्य मणि-हीन सर्प की समता करनेवाले ।

"इन अपने उलझे केशों से तुम अनुपम अभिरामा
"शैवल-शेष ग्रीष्म-सरिता सी दिखलाती हो क्षामा ॥

(५)

"लाक्षा-रस से राजभवन को रञ्जित करनेवाले,
"रुचिर नूपुरों के शब्दों से मन को हरनेवाले ।
"हाय ! तुम्हारे पाद-पद्म ये क्षत-विक्षत कुश द्वारा
"करते हैं अब नित्य रक्तमय दुर्गम वन-पथ सारा ॥

(६)

"दुस्सह विपिन-वास के कारण विविध कष्ट की मारी
"आभूषण-विहीन यह सुन्दर कोमल देह तुम्हारी ।
"दीन, मलीन, व्यथित, व्याकुल है हाय! हो रही ऐसी
"हो जाती है हिम की मारी मृदुल कमलिनी जैसी ॥

(७)

"खोकर राज-पाट सब अपना पाण्डव हुए भिखारी;
"अहो ! इसी कारण से तुम पर पड़ा दुःख यह भारी ।
"फिर भी उन अज्ञानों को तुम प्रीतिसहित भजती हो
"हतभाग्यों को लक्ष्मी के सम क्यों न उन्हें तजती हो ?

(८)

"हे कृष्णे ! भ्रू-भङ्ग न करके सोचो बात हमारी,
"हार चुके जो द्यूत-दाँव में तुम सी प्यारी नारी ।
"अज्ञ नहीं तो और कौन हैं पाण्डव, तुम्हीं बताओ;
"अहो कष्ट फिर भी जो उन पर निज अनुराग दिखाओ ॥

(९)

"सिन्धुराज हम विदित जयद्रथ शूर, वीर,सेनानी,
"सदा तुम्हारे दास रहेंगे बनो हमारी रानी ।
"दुखदायी वनवास छोड़ कर राज्य करो सुख पाके,
"होंगे सारे काम हमारे अब से तव इच्छा के" ॥

(१०)

खड़ी हुई नीचे कदम्ब के सुग्रीवा कृष्णा से—
कह कर ऐसे वचन मुग्ध हो बढ़ी हुई तृष्णा से ।
उसने उसे भेटने के हित दोनों हाथ बढ़ाये;
एक कपोती पर मानों दो दुर्द्धर विषधर धाये ॥

(११)

उसके ऐसे दुराचरण से डरी बहुत पाञ्चाली,
क्रोधित भी अति हुई चित्त में पद-ताड़ित ज्यों व्याली ।
करके तब तनु-लता सङ्कुचित हो कुञ्चित-भ्रूवाली
पीछे हटती हुई शीघ्र वह बोली वर-वचनाली ॥

(१२)

"अवनीपति होकर भी अरे, नीच, नराधम, घाती,
"कहते हुए वचन ये तेरी जीभ क्यों न जल जाती ।
"न्याय-दण्ड के अधिकारी मुझ पर-दारा को घेरे
"गिर पड़ते क्यों नहीं भूमि पर कट कर कर-युग तेरे ॥

(१३)

"निकट विनाश-काल आने से बुद्धि भ्रष्ट हो जाती;
"नीतिज्ञों की उक्ति मुझे यह बहुत ठीक दिखलाती ।
अति विश्रुत यह कथन जो कहीं नहीं युक्तियुत होता
"तो यों दुराचरण करने को तू क्यों प्रस्तुत होता ?

(१४)

"कर मुझ से वर्ताव निन्द्य यह होकर अति अभिमानी,
"निश्चय ही निज मृत्यु बुलाई तूने हे अज्ञानी !
"कुपित फणी के फण की मणि को हाथ बढ़ानेवाला
"कौन मूर्ख जीवित रह सकता सहकर विष की ज्वाला ?

(१५)

"अभी ज्ञात होगा जैसा तू शूर, वीर, बलधारी
"आते ही होंगे मृगया से पाण्डव रिपु-संहारी ।
"जब गाण्डीव बाण का तेरा प्राण लक्ष्य होवेगा
"सच कहती हूँ निज करनी पर अभी अभी रोवेगा ॥

(१६)

"तज कर भी सर्वस्व जिन्होंने तजा न धर्म्म कदापि
"ऐसे धर्म्मराज की निन्दा क्यों न करे तू पापी ।
"(सत्पुरुषों के चरित अलौकिक मूर्ख बुरा बतलाते"
"क्योंकि चरित्र हेतु ही उनकी नहीं समझ में आते)"*

---

* इस पद्य का उत्तरार्द्ध कुमारसम्भवसार से उद्धृत किया गया है ।

शकुन्तला-पत्रलेखन ।

अनुपम-रूप-निधान शकुन्तला यह सुन्दरी । प्रेमपत्र पर ध्यान जो प्रियतम को लिख रही ॥

(१७)

सुनकर वचन द्रौपदी के यों क्रोधित होकर जी में
तत्क्षणही बलपूर्वक उसने उस पुण्याश्रम ही में।
व्याकुल पतिस्मरण-रत उसको हरण कर लिया ऐसे–
हरण किया था लङ्केश्वर ने जनकसुता को जैसे॥

(१८)

अति ही शीघ्र पाण्डवों ने फिर आकर उसे उबारा;
किन्तु जयद्रथ को दयालु हो नहीं उन्होंने मारा।
छोड़ दिया यह देख कि उसके स्वजन विकल रोते हैं;
सज्जन स्वभावही से अतिशय क्षमावान होते हैं॥

——

३४–शकुन्तला-पत्र-लेखन।

(१)

शकुन्तला की चाह में होकर अधिक अधीर
फिरते थे दुष्यन्त नृप मञ्जु मालिनी-तीर।
मञ्जु मालिनी-तीर विरह के दुख के मारे
करते विविध विलाप मिलन की आशा धारे।
होती है ज्यों चाह दीन जन को कमला की,
थी चिन्ता गम्भीर चित्त में शकुन्तला की॥

(२)

"होता जिसका ध्यान ही अति अप्रिय सब काल
अनुभव ऐसे विरह का क्यों न करे बेहाल?॥
क्यों न करे बेहाल विरह की पीड़ा भारी,
जान पड़ें क्यों भार न जग की बातें सारी।
प्रिय-मिलनातुर कहो कौन सुधि बुधि नहिं खोता
अहो! विरह का समय बड़ा ही भीषण होता॥

(३)

दुखदायी हो आज यह सखकर त्रिविध समीर
प्रिया बिना करता व्यथित मेरा कृशित शरीर।
मेरा कृशित शरीर न सुख इससे पाता है;
उलटा आग समान उसे यह झुलसाता है।
विज्ञों ने यह बात बहुत ही ठीक बताई–
बन जाता है कभी सुधा भी विष दुखदायी॥

(४)

करता है तू पञ्चशर! विद्ध यदपि मम चित्त
हूँ कृतज्ञ तेरा तदपि मैं इस कार्य्य-निमित्त।
मैं इस कार्य्य-निमित्त मानता हूँ गुण तेरा,
इस प्रकार उपकार मार! होता है मेरा।
जिस सुमुखी का विरह धैर्य्य मेरा हरता है,
उससे ही मिलनार्थ प्रेरणा तू करता है॥"

(५)

इस प्रकार से घूमते छोड़ काम सब और;
देखी नृप ने निज प्रिया एक मनोहर ठौर।
एक मनोहर ठौर पड़ी पल्लव-शय्या पर,
कृशित-कलाधर कला-सदृश तो भी अति सुन्दर।
लगे देखने उसे नृपति तब बड़े प्यार से;
देख न कोई सके खड़े हो इस प्रकार से॥

(६)

जैसे उसके विरह में थे व्याकुल दुष्यन्त
थी वह भी उनके बिना व्यग्र विकल अत्यन्त।
व्यग्र विकल अत्यन्त नहीं धीरज धरती थी;
प्रेम-सिन्धु-वड़वाग्नि बीच जल जल मरती थी।
सब शीतल उपचार दहन करते थे ऐसे—
नव नलिनी को तुहिन दहन करता है जैसे॥

(७)

होती ज्यों निशि में विकल कोकी कोक-विहीन
थी त्यों ही वह प्रिय बिना विरह-विकल अति दीन।
विरह-विकल अति दीन न कल पाती थी पल भर;
दोनों सखियाँ यदपि यत्न में थीं अति तत्पर।
क्षण क्षण में मदनाग्नि धैर्य्य उसका थी खोती;
ओषधियों से दूर मानसिक व्याधि न होती॥

(८)

इस दुख से ही दुखित हो सखियों का मत मान,
उस मृग-नयनी ने लिखा प्रीति-पत्र सुखदान।
प्रीति-पत्र सुखदान लिखा दुष्यन्त भूप को,
लोकोत्तर-लावण्य मनोमोहन सुरूप को।

मानों उससे कहा स्वयं आशा ने मुख से,
है बस यही उपाय मुक्ति-दाता इस दुख से ॥

(९)

प्रेम-पत्र वह जिस समय लिखती थी धर ध्यान,
उसी समय के दृश्य का है यह चित्र प्रधान ।
है यह चित्र प्रधान देखिए इसे रसिक जन !
रविवर्म्मा का कृत्य न हरता यह किसका मन ?
पति-स्नेह से मुग्ध भूल सब पीड़ा दुस्सह,
किस प्रकार लिख रही देखिए प्रेम-पत्र वह ॥

(१०)

सु मा इसकी इस समय अकथनीय है मित्र !
अनुपम-मुद्रा-वेश त्यों सुन्दर भाव विचित्र ॥
सुन्दर भाव विचित्र रूप रमणीय मनोहर,
गुरुनितम्ब, कटि क्षीण, पीन कुच, कृष्ण केशवर ।
पुष्पाभरण मनोज्ञ योग्य वनदेवी उपमा,
दर्शनीय अति दिव्य अलौकिक मुख की सुषमा ॥

(११)

करते रचना पत्र की धरे हुए प्रिय ध्यान;
यह वियोगिनी हो रही संयोगिनी समान ।
संयोगिनी समान प्रफुल्लित दिखलाती है;
शब्द सोचती हुई अलौकिक छवि पाती है ।
उन्नत कुछ भ्रूलता नयन निश्चल मन हरते;
पुलकित युगल कपोल प्रकट पति में रति करते ॥

(१२)

"प्रियवर ! मैं तव हृदय की नहीं जानती बात;
संतापित करता मुझे पुष्पायुध दिन रात ।
पुष्पायुध दिन रात घात करता रहता है;
तव मिलनातुर गात दाह दुस्सह सहता है ।
विधु-वियोग से व्यथित कुमुदिनी होती सत्वर;
पर विधु-मन की किसे ज्ञात हे निर्दय प्रियवर !"

(१३)

प्यारे पति को पद्य में लिखकर यों सब हाल,
लगी सुनाने वह उसे सखियों को जिस काल ।
सखियों को जिस काल पत्र वह लगी सुनाने,
चन्द्र-वदन से प्रेम-सुधा-धारा बरसाने ।
सफल मान दुष्यन्त सुकृत इससे निज सारे,
होकर झट पट प्रकट वचन बोले यों प्यारे ॥

(१४)

"देता है कृशतनु ! तुझे ताप मात्र ही काम ;
किन्तु भस्म करता मुझे निशि दिन आठों याम ।
निशि दिन आठों याम काम है मुझे जलाता ;
दहन-दुःख अनुभवी तदपि वह दया न लाता ।
कुमुदिनि का तो दिवस हास्य ही हर लेता है ;
किन्तु शशी को क्षीण दीन वह कर देता है ॥"

(१५)

सहसा ऐसे मिलन से हुए भाव जो व्यक्त ;
उनके कहने में सखे हैं हम सदा अशक्त ।
हैं हम सदा अशक्त मिलन-सुख समझाने में ;
प्रणयि जनों का चरित न आसकता गाने में ।
कार्य्य-कथन-सादृश्य किया जा सकता कैसे ?
वही जानते इसे मिले जो सहसा ऐसे ॥

३५—गर्विता ।

(१)

विद्वानों के निकट अपना नाम मैं क्या बताऊँ ?
शम्पा, चम्पा-कनकलतिका आदि क्या क्या गिनाऊँ ?
होता है जो रुचिकर जिसे ज्ञात इच्छानुसार
रक्खे मेरे अलग सब हैं नाम नाना प्रकार ॥

(२)

काव्य-द्वारा कविजन मुझे "गर्विता" हैं बताते ;
जाने क्या वे प्रकट मुझमें गर्व का चिह्न पाते ।
लाता मेरा चरित उनके काव्य में दिव्य स्वाद—
देते होंगे यह इसलिए वे मुझे साधुवाद !

(३)

होती जाती अब जब सभी लुप्त है जाति-पाँति ;
"सद्वंशा हूँ"-कथन फिर यों योग्य है कौन भाँति ?

गर्विता ।

हो जाती है निरख जिसको कौमुदी-कान्ति फीकी, देखो कैसी सरस छवि है गर्विता सुन्दरी की।
देता जैसे झलक मधु है काच के पात्र में से, होता गर्व प्रकट इसके स्वर्ण से गात्र में से ॥

"राधा-सुत तुम नहीं, पुत्र मेरे हो प्यारे ;
मानो मेरे वचन सत्य ये निश्चय सारे ॥

(९)

"आमन्त्रित कर सूर्य्यदेव को मैंने मन में,
मन्त्र-शक्ति से तुम्हें जना था पिता-भवन में।
आत्म-विषय में विज्ञ न होने से तुम सम्प्रति,
रखते हो रिपु-रूप कौरवों में अनुचित रति ॥

(१०)

"अहो दैव ! उत्पन्न किया था जिसको मैंने,
सुर-सम्भव नर-जन्म दिया था जिसको मैंने।
वही आज तुम वैर पाण्डवों से रखते हो,
कर्तव्याकर्तव्य नहीं कुछ भी लखते हो ॥

(११)

"होता तुमसे सदा पाण्डवों का अनहित है,
सोचो तो हे वत्स ! तुम्हें क्या यही उचित है ?
सुत-सेवा-उपहार दिया जाता क्या योंही ?
माता-ऋण-प्रतिकार किया जाता क्या योंही ?

(१२)

" जननी का सन्तोष पूर्ण करना मनमाना,
धर्म्मज्ञों ने यही धर्म्म का मर्म्म बखाना।
सो हे धार्म्मिक-धीर ! तुम्हारा है सब जाना,
फिर क्या समुचित नहीं पाण्डवों को अपनाना ?

(१३)

"सदाचरण-रत सदा युधिष्ठिर अनुज तुम्हारे,
भीम, नकुल, सहदेव, पार्थ अनुगामी सारे।
हो तुम मम सुत प्रथम पाण्डवों के प्रिय भ्राता,
सो सब सोच विचार बनो अब उनके त्राता॥

(१४)

"पार्थ-भुजों से हुई उपार्जित सब सुखकारी,
दुर्योधन से हरी गई जो छल से सारी।
धर्म्मराज की वही राजलक्ष्मी अति प्यारी,
भोगो अरि-संहार स्वयं तुम हे बलधारी ॥

(१५)

" तुम लोगों को देख भेटते बन्धु भाव से,
प्रेम और आनन्द सहित अत्यन्त चाव से।
पामर कौरव जलें, स्वजन सारे सुख पावें,
मनचीते सब काम तभी मेरे हो जावें॥

(१६)

"राम-कृष्ण का नाम लिया जाता है जैसे,
सूर्य्य-चन्द्र को याद किया जाता है जैसे।
वैसेही सब लोग कहें कर्णार्जुन मुख से,
करो वीर तुम वही छुड़ाकर मुझको दुख से ॥

(१७)

"कर्णार्जुन-सम्मिलन जगत को आज बता दो
बन्धु-बन्धु-सम्बन्ध सभी को प्रकट जता दो।
प्रेम-सिन्धु में स्वजन-वर्ग को शीघ्र नहा दो,
शत्रु-जनों का गर्व खर्व कर सर्व बहा दो ॥

(१८)

" राम-भरत की भेंट हुई थी पहले जैसे।
कर्ण-युधिष्ठिर-मिलन आज देखें सब तैसे।
आई हूँ मैं इसी लिये इस समय यहाँ पर,
करो पुत्र स्वीकार वचन मेरे ये हितकर" ॥

(१९)

मर्म-स्पर्शी वचन श्रवण कर भी कुन्ती के,
बदले नहीं विचार कर्ण के निश्चल जी के।
प्रत्युत्तर फिर लगा उसे देने वह ऐसे—
मुरज मधुर गम्भीर घोष करता है जैसे ॥

(२०)

"हे वर-वीरप्रसू ! वचन ये सत्य तुम्हारे,
जन्म-कथा निज जान अङ्ग पुलकित मम सारे।
सूत-वंश में हुए किन्तु संस्कार हमारे,
अधिरथ-राधा विदित हमारे पालक प्यारे ॥

(२१)

"दुर्योधन ने सदा हमारा मान किया है,
प्रेमसहित धन-धान्य-पूर्ण बहुराज दिया है।

मानें जाते सब सम जहाँ काक, केकी, मराल ;
विज्ञों को है समुचित वहाँ मौन ही सर्वकाल ॥

(४)

हैं शृङ्गार-प्रमुख* जितने और शीतांशु-भाग *
भोगे मैंने निज वयस के वर्ष हैं सानुराग ।
जाना तो भी अब तक कभी रोग मैंने न कोई ;
दैवेच्छा से मुदित सुख की नींद है नित्य सोई ॥

(५)

"होता कार्य्य प्रकटित कहीं कारणाभाव में भी"—
काव्यज्ञों के इस कथन में हूँ हुई बाध्य मैं भी ।
है कोई भी गुण न मुझमें मान-सम्मान-योग्य ;
तो भी मेरे स्वजन मुझको मानते हैं मनोज्ञ ॥

(६)

होके पत्नी प्रवर पति की चित्त से नित्य प्यारी,
पाऊँगी मैं सब सुख सदा कामना-पूर्णकारी ।
होंगे नित्य स्वजन मुझसे तुष्ट वात्सल्यधारे—
दैवज्ञों के वचन मुझको ये हुए सत्य सारे ॥

(७)

नीतिज्ञों का यह कथन है "भूल जाते सभी हैं"—
कैसे मानूँ फिर न मुझसे दोष होते कभी हैं ?
तो भी स्वामी मुझ पर सदा हैं कृपा ही दिखाते ;
प्रेमज्ञों को प्रणयिजन के दोष भी हैं सुहाते ॥

(८)

"मैंने ऐसा मृदुल-तनु ! क्या दोष तेरा किया है ?
प्यारी ! जो यों† गुण-वश मुझे बाँध तूने लिया है"
स्वामी के यों वचन सुनती जो सदा प्रेम-जन्य,
मानूँ मैं क्यों न इस जग में आपको धन्य धन्य ॥

(९)

सोती पीछे यदपि पति से मैं गये भूरि रात ;
होती किन्तु प्रथम सबसे भङ्ग निद्रा प्रभात ।
तो भी ग्लानि, श्रम, मद तथा है न आलस्य आता ;
हो जाती है प्रकृति उसकी जो किया नित्य जाता ॥

*सोलह ।
† गुण = सुशीलता, पति-भक्ति आदि गुण और रस्सी ।

(१०)

"अज्ञानों के मलिन मन में है न होता विवेक"—
पाती हूँ मैं सतत इसका आप दृष्टान्त एक ।
जाती लेने सुमन जब मैं बाग़ में पूजनार्थ,
देते त्रास भ्रमर मुझको जान वल्ली यथार्थ ॥

(११)

"भाते जैसे सरस हमको पाक तेरे बनाये—
वैसे मीठे, रुचिकर, वधू ! दूसरे के न पाये ।
है तू पद्मा* सचमुच सदा गेह-लक्ष्मी हमारी"—
होते मेरे श्वशुर मुझसे नित्य यों तुष्ट भारी ॥

(१२)

"आई ज्योत्स्ना* जिस दिवस से गेह में तू हमारे,
माला धारे भजन करती छोड़ मैं काम सारे ।
पाये मैंने सब सुख, वधू ! हो बड़ी आयु तेरी"—
यों वात्सल्य प्रकट करती सर्वदा सास मेरी ॥

(१३)

"आली ! तू तो विदित सबको है सदा निष्कलङ्क ;
ग्रन्थों से भी प्रकटित तथा है कलङ्की मयङ्क ।
भावे कैसे फिर हम तुझे चारुचन्द्रा नवेली"—
हैं यों मेरी सतत कहती स्नेहशीला सहेली ॥

(१४)

प्यारा जी से बहुत मुझको पालतू मोर मेरा ;
मेरे आगे सतत वह है नाचता प्रेम-प्रेरा ।
उत्कण्ठा से चिकुर मम ये चोंच से खींचता है†
योंही मेरी प्रणय-लतिका हर्ष से सींचता है ॥

(१५)

सीखी मैंने निज जननि से सत्कलायें अशेष ;
भाती किन्तु प्रथित मुझको चित्रविद्या विशेष ।

* पद्मा, ज्योत्स्ना प्रभृति नामों से पहले पद्य में कही हुई बात का समर्थन होता है ।

†मर्मज्ञ पाठकों को यह बतलाने की आवश्यकता नहीं है कि क्यों "गर्विता" का पालतू मोर उसके बालों को खींचता है । जब कवियों को केशों में मेघ और भुजङ्गों की भ्रान्ति होती है तब मयूर का तो कहना ही क्या है ।

किये सतत उपकार जिन्हों ने ऐसे ऐसे,
त्यागें उनका सङ्ग कहो फिर हम अब कैसे ?

(२२)

"टाले नहीं कदापि जिन्होंने वचन हमारे ;
बन्धु-भाव जो रहे सदा ही हम पर धारे ।
उनका ऐसे समय साथ कैसे हम छोड़ें ?
तोड़ पूर्व-सम्बन्ध वैर कैसे हम जोड़ें ?

(२३)

"किये भरोसा सदा हमारा ही निज मन में,
दुर्योधन ने सकल कार्य हैं किये भुवन में ।
फिर भी जो साहाय्य करें उनका न कहीं हम,
यही कहेंगे विज्ञ मही में मनुज नहीं हम ॥

(२४)

"इस कारण हे जननि ! रहेंगे जीवित जौ लों,
होने देंगे अहित न दुर्योधन का तौ लों ।
लेंगे हम आमरण पक्ष उस बलधारी का,
करना क्या अपकार चाहिए उपकारी का ?

(२५)

"कौरवपति की ओर धर्म्म को हम पालेंगे,
किन्तु तुम्हारे भी न वचन को हम टालेंगे ।
एक पार्थ को छोड़ तुम्हारे हित-कारण से,
मारेंगे हम नहीं किसी पाण्डव को रण से ॥

(२६)

"अर्जुन ही या हमी एक जन लड़ स्वपक्ष में,
पावेंगे यदि विमल वीरगति को समक्ष में ।
तो भी सुत हे जननि ! रहेंगे पाँच तुम्हारे,
होंगे मिथ्या नहीं कभी ये वचन हमारे ॥"

(२७)

दृढ़-प्रतिज्ञ यों देख कर्ण को कुन्ती रानी,
बोल सकी इस हेतु न उससे फिर कुछ वाणी ।
इसी विषय का चित्र बनाकर यह मनभाया,
व्रज बाबू ! चातुर्य्य-चरम तुमने दिखलाया ॥
यह दृश्य देखकर कौन जन
करता यों न विचार है —
"इस क्षण-भङ्गुर संसार में
एक धर्म्म ही सार है ॥"

———